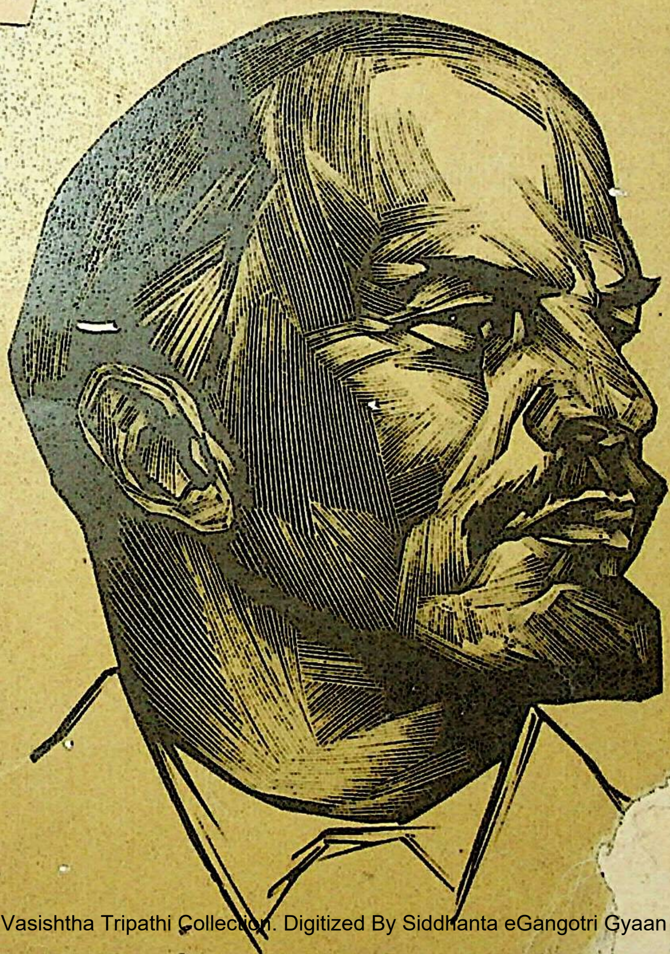
2

लेनिन

12

ाज्य और क्रान्ति



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

6·3

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

व्ला० इ० लेनिन

राज्य और क्रान्ति

राज्य के संबंध में मार्क्सवाद की शिक्षा
और क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के कार्यभार[1]



प्रगति प्रकाशन
मास्को

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक की ओर से

व्ला० इ० लेनिन की कृति 'राज्य और क्रान्ति' का अनुवाद व्ला० इ० लेनिन की संग्रहीत रचनाओं के पांचवें रूसी संस्करण के अनुसार किया गया है। यह संस्करण सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के अधीन मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा तैयार किया गया है।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले संस्करण की भूमिका

सिद्धान्त और व्यावहारिक राजनीति दोनों की दृष्टि से राज्य का प्रश्न आज़ विशेष महत्त्व प्राप्त कर रहा है। साम्राज्यवादी युद्ध ने इजारेदारी पूंजीवाद के राजकीय-इजारेदारी पूंजीवाद में वदलने की प्रक्रिया को असाधारण रूप से तेज़ और तीखा वना दिया है। राज्य द्वारा, जो पूंजीपतियों के सर्वशक्तिशाली संघों के साथ अधिकाधिक घनिष्ठतापूर्वक मिलकर एक होता जा रहा है, मेहनतकश जनता का प्रचंड उत्पीड़न सतत प्रचंडतर होता जा रहा है। उन्नत देशों को – हम उनकी "पिछाड़ी" की वात कर रहे हैं – मज़दूरों के लिए फ़ौजी-मशक़्क़ती क़ैदख़ानों में परिवर्तित किया जा रहा है।

लम्वा खिंचनेवाले युद्ध की अश्रुतपूर्व तकलीफ़ें और भयानकताएं जनता की स्थिति को असह्य वना रही हैं, उसके क्रोध को वढ़ा रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रान्ति साफ़ तौर से परिपक्व हो रही है। राज्य के प्रति उसके रुख़ का प्रश्न एक अमली महत्त्व प्राप्त कर रहा है।

दशाब्दियों के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण विकास के दौरान इकट्ठे हुए अवसरवादी तत्त्वों ने सारी दुनिया की आधिकारिक समाजवादी पार्टियों पर हावी हो जानेवाले सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद को जन्म दिया। कथनी में समाजवाद और करनी में अंधराष्ट्रवाद की यह प्रवृत्ति (रूस में प्लेख़ानोव, पोत्रेसोव, ब्रेश्कोव्स्काया, रुवानोविच और ज़रा छिपे रूप में, त्सेरेतेली, चेर्नोव और मण्डली; जर्मनी में शीदेमान, लेजियन, डेविड आदि; फ़्रांस और वेल्जियम में रेनोदिल, गेद, वैंडरवेल्डे; इंगलैंड में हिन्दमैन और फ़ेबियन[2], आदि आदि) "समाजवाद के नेताओं" द्वारा नीचतापूर्वक चाटुकारी के साथ "अपने" राष्ट्रीय पूंजीपति-वर्ग के ही नहीं, वल्कि "अपने" राज्य के भी हितों के साथ तालमेल से पहचानी जाती है, क्योंकि अधिकतर तथाकथित वड़ी ताक़तें वहुत दिनों से कितनी ही छोटी और कमज़ोर जातियों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का शोषण करती हैं और उन्हें ग़ुलाम वनाती हैं। साम्राज्यवादी युद्ध ठीक इसी तरह के लूट के माल के बंटवारे और फिर से बंटवारे क़ा युद्ध है। आम तौर से पूंजीपति-वर्ग के और ख़ास तौर से साम्राज्यवादी पूंजीपति-वर्ग के प्रभाव से मेहनतकश जनता की मुक्ति का संघर्ष "राज्य" के सम्बन्ध में अवसरवादी पूर्वाग्रहों के ख़िलाफ़ संघर्ष के विना असंभव है।

सवसे पहले हम राज्य के संवंध में मार्क्स और एंगेल्स की शिक्षा की समीक्षा करते हैं और उस शिक्षा के विस्मृत अथवा अवसरवादियों द्वारा विकृत कर दिए गए पहलुओं पर विशेष विस्तार से विचार करते हैं। इसके वाद हम इन विकृतियों के प्रमुख प्रतिनिधि और दूसरे इन्टरनेशनल (१८८९–१९१४) के सवसे प्रख्यात नेता कार्ल काउत्स्की के सिद्धांत की छानवीन करेंगे, जो वर्तमान युद्ध के दौरान ऐसे खेदजनक दिवालिएपन का शिकार हो गया है। अन्त में हम १९०५ की और ख़ास तौर से १९१७ की रूसी क्रान्ति के अनुभवों के मुख्य निष्कर्ष निकालेंगे। साफ़ है कि यह वादवाली क्रान्ति इस समय (अगस्त १९१७ के शुरू में) अपने विकास की पहली मुद्दत पूरा कर रही है, लेकिन इस पूरी क्रान्ति को साम्राज्यवादी युद्ध से पैदा समाजवादी सर्वहारा क्रान्तियों की शृंखला की एक कड़ी के रूप में ही समझा जा सकता है। इस प्रकार से राज्य के प्रति समाजवादी सर्वहारा क्रान्ति के रुख़ का प्रश्न अमली राजनैतिक महत्त्व ही नहीं, वल्कि जनता को यह समझाने के प्रश्न के रूप में सर्वाधिक तात्कालिक महत्त्व प्राप्त कर लेता है कि पूंजी के जुए से निकट भविष्य में छुटकारा पाने के लिए उसे क्या करना होगा।

अगस्त, १९१७ लेखक

दूसरे संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत दूसरा संस्करण लगभग विना किसी परिवर्तन के प्रकाशित हो रहा है। सिर्फ़ अध्याय २ में धारा ३ जोड़ दी गयी है।

लेखक

मास्को,
१७ दिसम्बर, १९१८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय १

वर्ग-समाज और राज्य

१. राज्य – असाध्य वर्ग-विरोधों की उपज

मार्क्स की शिक्षा के साथ आज वही हो रहा है, जो उत्पीड़ित वर्गों के मुक्ति-संघर्ष में उनके नेताओं और क्रान्तिकारी विचारकों की शिक्षा के साथ इतिहास में अक्सर हुआ है। उत्पीड़क वर्गों ने महान क्रान्तिकारियों को उनके जीवन भर लगातार यातनाएं दीं, उनकी शिक्षा का अधिक से अधिक वर्बर द्वेष, अधिक से अधिक क्रोधोन्मत्त घृणा, तथा झूठ और कुत्सा के अधिक से अधिक अन्धाधुन्ध मुहिम द्वारा स्वागत किया। लेकिन उनकी मौत के बाद उनकी क्रान्तिकारी शिक्षा को सारहीन करके, उसकी क्रान्तिकारी धार को कुन्द करके, उसे भ्रष्ट करके उन्हें निरनिष्ठकर देव-प्रतिमाओं का रूप देने, कहें कि उन्हें देवत्व प्रदान करने और उत्पीड़ित वर्गों को "बहलाने" तथा धोखा देने के लिए उनके नामों को निश्चित गौरव प्रदान करने के प्रयत्न किये जाते हैं। मार्क्सवाद के ऐसे "संस्कार" में पूंजीपति-वर्ग और मज़दूर-आन्दोलन के अवसरवादियों के बीच आज सहमति है। उस शिक्षा के क्रान्तिकारी पहलू को, उसकी क्रान्तिकारी भावना को भुला दिया जाता है, मेट दिया जाता है, विकृत कर दिया जाता है। उस चीज़ को सामने लाया जाता है, गौरवान्वित किया जाता है जो पूंजीपति-वर्ग को मान्य है या मान्य प्रतीत होती हैं। सभी सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी अब "मार्क्सवादी" बन गये हैं, हंसिये नहीं! और कल तक मार्क्सवाद की तबाहकारी के विशेषज्ञ जर्मन पूंजीवादी विद्वान अब अधिकाधिक "राष्ट्रीय-जर्मन" मार्क्स की बात करते हैं, जिन्होंने मानो लुटेरू युद्ध चलाने के लिए ही शानदार ढंग से संगठित मज़दूर-यूनियनों को प्रशिक्षित किया था!

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसी परिस्थितियों में, मार्क्सवाद की अभूतपूर्व व्यापक विकृति को देखते हुए हमारा पहला कर्त्तव्य राज्य के बारे में मार्क्स की असली शिक्षा की पुनस्स्थापना करना है। इसके लिए ख़ुद मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं से बहुतेरे लम्बे उद्धरण देना ज़रूरी है। इसमें सन्देह नहीं कि लम्बे उद्धरण पाठ्य-सामग्री को बोझिल बना देते हैं और उसकी लोकप्रियता में कुछ भी सहायता नहीं पहुंचाते। लेकिन उनके बिना काम चला लेना बिलकुल संभव नहीं है। राज्य के प्रश्न पर मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों से सभी या कम से कम सभी निर्णायक स्थलों को, जहां तक हो सके, पूरे रूप में उद्धृत करना ज़रूरी है, जिससे कि वैज्ञानिक समाजवाद के संस्थापकों के सम्पूर्ण विचारों और उन विचारों के विकास के संबंध में पाठक ख़ुद अपनी स्वतंत्र राय क़ायम कर सकें, जिससे कि इस समय हावी "काउत्स्कीपंथ" द्वारा उनकी तोड़-मरोड़ दस्तावेज़ी तौर से साबित और साफ़ साफ़ प्रदर्शित हो जाए।

हम एंगेल्स की सबसे लोकप्रिय पुस्तक, 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' से शुरू करेंगे, जिसका छठा संस्करण स्टुटगार्ट से १८९४ में ही निकल चुका था। उद्धरणों का अनुवाद हमें मूल जर्मन भाषा से करना होगा, क्योंकि इस पुस्तक के रूसी अनुवाद अपनी बहुसंख्यकता के बावजूद अधिकतर या तो अधूरे हैं या बेहद असन्तोषजनक हैं।

अपने ऐतिहासिक विश्लेषण का निष्कर्ष निकालकर एंगेल्स कहते हैं: "राज्य किसी प्रकार भी समाज पर बाहर से लादी गयी शक्ति नहीं है। इसी प्रकार राज्य 'नैतिक विचार की वास्तविकता', 'बुद्धि की प्रतिमूर्त्ति और वास्तविकता' भी नहीं है, जैसा हेगेल दावा करते हैं। राज्य विकास की एक ख़ास मंज़िल पर समाज की उपज है; राज्य इस बात की स्वीकृति है कि यह समाज ख़ुद अपने साथ न हल होने लायक़ विरोध में फंस गया है, ऐसे असाध्य अन्तर्विरोधों से जर्जर हो गया है, जिनसे छुटकारा पाने में असमर्थ है। लेकिन इसलिए कि ये अंतर्विरोध, विरोधी आर्थिक हितों वाले वर्ग, निष्फल संघर्ष में एक दूसरे को और समाज को भस्म न कर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दें, एक ऐसी शक्ति आवश्यक हो गयी जो मालूम पड़े कि समाज से ऊपर हो, ऐसी शक्ति जो टकराव को मद्धिम वनाये, उसे 'व्यवस्था' की सीमाओं में रखे। और यह शक्ति, जो समाज से पैदा होती है, लेकिन जो अपने को उसके ऊपर रखती है और उससे अधिकाधिक वेगाना होती जाती है, राज्य है।" (छठा जर्मन संस्करण, पृष्ठ १७७–१७८।)[3]

यहां राज्य की ऐतिहासिक भूमिका और उसके अर्थ के सवाल पर मार्क्सवाद का बुनियादी विचार पूर्ण स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त है। राज्य वर्ग-विरोधों की असाध्यता की उपज और अभिव्यक्ति है। राज्य उसी समय, जगह और हद तक पैदा होता है जव, जहां और जिस हद तक वर्ग-विरोधों का वस्तुपरक ढंग से समाधान नहीं हो सकता और उलटकर कहें तो राज्य की मौजूदगी यह सावित करती है कि वर्ग-विरोधों का समाधान असम्भव है।

ठीक इसी सवसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी सूत्र पर दो मुख्य लाइनों पर चलनेवाली मार्क्सवाद की तोड़-मरोड़ शुरू होती है।

एक तरफ़ तो वे पूंजीवादी और ख़ास तौर से निम्नपूंजीवादी विचार-धारा-निरूपक, जो निर्विवाद ऐतिहासिक तथ्यों के दवाव से यह मानने को मजवूर हैं कि राज्य वहीं होता है जहां वर्ग-विरोध और वर्ग-संघर्ष होते हैं, मार्क्स को इस तरह "सुधारते" हैं कि राज्य वर्गीय समन्वय का निकाय वनकर सामने आता है। मार्क्स के अनुसार अगर वर्गीय समन्वय संभव होता, तो राज्य नहीं पैदा होता, नहीं क़ायम रहता। निम्नपूंजीवादी और दक़ियानूस प्रोफ़ेसरों और समाजशास्त्रियों के यहां—हर कहीं और अक्सर मार्क्स के अनुग्रहपूर्ण हवालों पर!—ऐसा होता है कि जैसे राज्य वर्गों का समन्वय करता ही है। मार्क्स के अनुसार राज्य वर्ग-प्रभुत्व का अस्त्र है, एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न का अस्त्र है, ऐसी "व्यवस्था" की सर्जना है जो वर्गीय टकरावों को मद्धिम करके इस उत्पीड़न को क़ानूनी और मज़वूत बनाती है। निम्नपूंजीवादी राजनीतिज्ञों की राय में व्यवस्था वर्गीय समन्वय ही है, न कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का उत्पीड़न; टकरावों को मद्धिम करने के माने हैं समन्वय करना, न कि उत्पीड़ित वर्गों को

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पीड़कों की तख़्ता-उलटाई के लिए लड़ने के निश्चित साधनों और ढंगों से वंचित करना।

उदाहरण के लिए, जब १९१७ की क्रान्ति में राज्य के महत्त्व और भूमिका का प्रश्न अपनी पूरी व्यापकता में उठा, व्यावहारिक रूप में, अविलंब कार्रवाई और उस पर भी जन-व्यापी पैमाने की कार्रवाई के प्रश्न के रूप में उठा, तो तमाम समाजवादी-क्रान्तिकारी[4] और मेंशेविक[5] फ़ौरन और पूर्ण रूप से "राज्य द्वारा" वर्गीय "समन्वय" के निम्नपूंजीवादी सिद्धान्त पर लुढ़क गए। इन दोनों पार्टियों के राजनीतिज्ञों के अनगिनत प्रस्ताव और लेख "समन्वय" के इस कूपमंडूकी और दक़ियानूसी सिद्धांत से सरापा सराबोर हैं। निम्नपूंजीवादी जनवादी यह समझने में कभी समर्थ नहीं होंगे कि राज्य एक निश्चित वर्ग के शासन का निकाय है, जिसका समन्वय अपने प्रतिकारी के साथ (अपने विरोधी वर्ग के साथ) नहीं हो सकता। राज्य के प्रति रुख़ इस बात की एक सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति है कि हमारे समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेंशेविक समाजवादी बिलकुल नहीं (जिस बात का हम बोल्शेविकों ने हमेशा दावा किया है), बल्कि लगभग समाजवादी तर्ज़े-बयानवाले निम्नपूंजीवादी जनवादी हैं।

दूसरी तरफ़, मार्क्सवाद की "काउत्स्कीपंथी" विकृति कहीं ज्यादा बारीक है। "सैद्धान्तिक रूप से" न तो इसे अस्वीकार किया जाता है कि राज्य वर्गीय प्रभुत्व का निकाय है और न इस बात को कि वर्ग-विरोध असाध्य हैं। लेकिन इस बात को या तो नज़र अन्दाज़ किया जाता है, या छिपाया जाता है कि अगर राज्य वर्ग-विरोधों की असाध्यता का फल है, अगर वह एक ऐसी शक्ति है जो समाज के ऊपर रहती है और "उससे अपने को अधिकाधिक बेगाना बनाती जाती है", तो यह साफ़ है कि उत्पीड़ित वर्ग की आज़ादी न केवल बलात् क्रान्ति के बिना, बल्कि राज्य की इस मशीनरी के उन्मूलन के बिना भी असंभव है, जो शासक वर्ग द्वारा सृजित हुई है और जिसमें यह "बेगानापन" मूर्त्तिमान है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, मार्क्स ने क्रान्ति के कार्यभारों के ठोस ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर बिल्कुल निश्चित रूप से यह सिद्धान्ततः स्वतोस्पष्ट निष्कर्ष निकाला था और जैसा कि हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक दिखायेंगे, ठीक इसी निष्कर्ष को काउत्स्की ने... "भुला दिया" और तोड़ा-मरोड़ा।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२. हथियारबन्द लोगों के विशेष दल, जेल, ग्रादि

एंगेल्स ग्रागे कहते हैं:

"...प्राचीन गोत्रात्मक (क़बायली या बिरादरी) संगठन[6] के मुक़ाबले राज्य पहले तो प्रजा के क्षेत्रीय विभाजन द्वारा पहचाना जाता है..."

ऐसा बंटवारा हमें "स्वाभाविक" लगता है, लेकिन वह पुरानी, क़बायली या गोत्रात्मक संगठन के साथ दीर्घ काल तक संघर्षरत रहा।

"...पहचान का दूसरा लक्षण है ऐसी सामाजिक सत्ता की स्थापना जो ग्रब ग्रपने ग्रापको सशस्त्र शक्ति के रूप में संगठित करनेवाली ग्राबादी के साथ प्रत्यक्ष रूप से मेल नहीं खाती थी। यह विशेष सामाजिक सत्ता ज़रूरी थी, क्योंकि समाज के वर्गों में विभाजन के बाद ग्राबादी का ग्रपनी पहल पर काम करनेवाला सशस्त्र संगठन ग्रसंभव हो गया... यह सामाजिक सत्ता हर राज्य में होती है। वह सिर्फ़ हथियारबन्द लोगों से ही नहीं, बल्कि ऐसे भौतिक उपसाधनों, जेलों तथा सभी प्रकार की बलात्कारी संस्थाग्रों से भी बनी है, जिनसे गोत्रात्मक (क़बायली) समाज-व्यवस्था बिलकुल ग्रपरिचित थी..."

एंगेल्स उसे "शक्ति" की ग्रवधारणा का स्पष्टीकरण करते हैं, जिसे राज्य कहा जाता है, जो समाज से पैदा हुई, लेकिन जो ग्रपने को उसके ऊपर रखती है ग्रौर उससे ग्रपने को ग्रधिकाधिक बेगाना करती जाती है। यह शक्ति मुख्यतया किस चीज़ में निहित होती है? वह जेल वग़ैरह को ग्रपने ताबे रखनेवाले हथियारबन्द लोगों के विशेष दलों में निहित होती है।

हम हथियारबन्द लोगों के विशेष दलों की बात ग्रौचित्य के साथ कह सकते हैं, क्योंकि सभी राज्यों के लिए लाक्षणिक सामाजिक सत्ता हथियारबन्द ग्राबादी ग्रौर "ग्रपनी पहल पर काम करनेवाले" उसके "सशस्त्र संगठन" के साथ "प्रत्यक्ष रूप से मेल नहीं खाती"।

सभी महान क्रान्तिकारी विचारकों की तरह एंगेल्स वर्ग-चेतन मज़दूरों का ध्यान ठीक उसी चीज़ की तरफ़ ग्राकर्षित करने की कोशिश करते हैं,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिसे हावी कूपमंडूकता सबसे कम ध्यान देने योग्य समझती है, सबसे अधिक स्वाभाविक और केवल जमे हुए ही नहीं, बल्कि कह सकते हैं कि जड़ीभूत पूर्वाग्रहों द्वारा प्रतिष्ठापित मानती है। स्थायी फ़ौज और पुलिस राज्यसत्ता की शक्ति के मुख्य उपकरण हैं, लेकिन क्या अन्यथा हो भी सकता है?

उन्नीसवीं सदी के अन्त के यूरोपियों के विशाल बहुमत के दृष्टिकोण से, जिनको एंगेल्स ने संबोधित किया था और जो न तो किसी बड़ी क्रान्ति से गुज़रे थे, न उसे निकट से देख ही पाए थे, अन्यथा नहीं हो सकता। "अपनी पहल पर काम करनेवाला आबादी का सशस्त्र संगठन" क्या है वे यह समझ नहीं सकते। समाज के ऊपर स्थित और उससे अपने को बेगाना करते जानेवाले हथियारबन्द लोगों के इन विशेष दलों की (पुलिस, स्थायी फ़ौज की) ज़रूरत क्यों पड़ी, इस प्रश्न का उत्तर पश्चिमी यूरोपीय और रूसी दक़ियानूस स्पेन्सेर या मिख़ाइलोव्स्की के फ़िक़रे उधार लेकर सामाजिक जीवन की जटिलता, क्रियाओं की विभिन्नता, आदि-आदि के हवालों द्वारा देते हैं।

इस तरह का हवाला "वैज्ञानिक" लगता है और सबसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी बात पर, असाध्य शत्रुतापूर्ण वर्गों में समाज के विभाजन पर परदा डालकर बंधे-बंधाए जीवनवाले आदमी को भली भांति प्रसुप्त कर देता है।

अगर यह विभाजन न होता, तो "अपनी पहल पर काम करनेवाला आबादी का सशस्त्र संगठन" अपनी जटिलता, अपनी ऊंची तकनीक आदि के कारण लाठी इस्तेमाल करनेवाले बन्दरों के झुंड, या आदिम लोगों, या क़बायली समाज में एकजुट लोगों के आदिम संगठन से भिन्न होता, लेकिन इस प्रकार का संगठन संभव होता।

वह असंभव इसलिए है कि सभ्य समाज शत्रुतापूर्ण, बल्कि असाध्य शत्रुतापूर्ण वर्गों में बंट गया है, जिनकी "अपनी पहल पर काम करनेवालों के ढंग की" हथियारबंदी से उनके बीच सशस्त्र संघर्ष छिड़ जायेगा। राज्य का उदय होता है, एक विशेष शक्ति, हथियारबन्द लोगों के विशेष दल सृजित होते हैं, और प्रत्येक क्रान्ति राज्य की मशीनरी को नष्ट करके हमें वर्ग-संघर्ष को उसके नग्न रूप में दिखला देती है, यह प्रत्यक्ष रूप में दिखला देती है कि प्रभुत्वशील वर्ग किस प्रकार अपनी सेवा करनेवाले हथियारबन्द लोगों के विशेष दलों को फिर से क़ायम करने की कोशिश करता है, किस प्रकार

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पीड़ित वर्ग इसी तरह का नया संगठन बनाने की कोशिश करता है, जो शोषकों की नहीं, बल्कि शोषितों की सेवा कर सके।

ऊपर के तर्क में एंगेल्स ने सैद्धान्तिक रूप से बिलकुल वही प्रश्न उठाया है, जो प्रत्येक महान क्रान्ति हमारे सामने व्यावहारिक रूप से, प्रत्यक्षत: और, इससे भी बढ़कर, जन-व्यापी कारंवाई के पैमाने पर प्रस्तुत करती है, यानी हथियारबन्द लोगों के "विशेष" दलों और "अपनी पहल पर काम करनेवाले आबादी के सशस्त्र संगठन" के आपसी संबंध का प्रश्न। हम देखेंगे कि यूरोपीय और रूसी क्रान्तियों के अनुभव द्वारा किस प्रकार यह प्रश्न ठोस रूप से स्पष्ट होता है।

लेकिन आइये, एंगेल्स की व्याख्या पर लौटें।

वह बताते हैं कि कभी-कभी, जैसे कहीं-कहीं उत्तरी अमरीका में, वह सामाजिक सत्ता कमज़ोर होती है (यहां पूंजीवादी समाज के दुर्लभ अपवाद और उत्तरी अमरीका के प्राक्-साम्राज्यवादी दौर में उसके उन हिस्सों का ज़िक्र है, जिनमें स्वतंत्र प्रवासियों की प्रधानता थी), लेकिन आम तौर से वह मज़बूत होती जाती है:

> "...सामाजिक सत्ता उस अनुपात में मज़बूत होती जाती है, जिसमें राज्य में वर्ग-विरोध तीव्र होते जाते हैं और उस अनुपात में, जिसमें पड़ोस के राज्य बड़े और अधिक आबाद होते जाते हैं। वर्तमान यूरोप को ही देखिये, जहां वर्ग-संघर्ष और दिग्विजय की होड़ ने सामाजिक सत्ता को इस दर्जे तक बढ़ा-चढ़ा दिया है कि वह पूरे समाज को, यहां तक कि राज्य को भी, निगल जाने का ख़तरा पैदा कर रही है..."

यह देर से देर पिछली शताब्दी की अन्तिम दशाब्दी के शुरू में लिखा गया था। एंगेल्स की अन्तिम भूमिका की तारीख़ १६ जून, १८९१ है। तब फ़्रान्स में साम्राज्यवाद की तरफ़ मुड़ने की—ट्रस्टों के पूर्ण प्रभुत्व के अर्थ में भी, बड़े बैंकों की सर्वशक्तिमत्ता के अर्थ में भी, और प्रकाण्ड औपनिवेशिक नीति, आदि के अर्थ में भी—अभी अभी शुरूआत हुई थी और उत्तरी अमरीका तथा जर्मनी में और भी कमज़ोर ढंग से हुई थी। तब से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"दिग्विजय की होड़" लम्बे डग भरती आगे बढ़ी है, इसलिए और भी कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के आरंभ तक भूमंडल इन "दिग्विजय की होड़ करनेवालों", यानी महान् लुटेरी ताक़तों, के बीच अन्तिम रूप से बंट चुका था। तब से सैनिक और नौसैनिक हथियारबंदी हैरतनाक ढंग से बढ़ गई है और दुनिया पर इंगलैंड या जर्मनी के प्रभुत्व के लिए, लूट के बंटवारे के लिए लड़े जानेवाले १९१४–१९१७ के खसोटू युद्ध ने अपहारी राज्यसत्ता द्वारा समाज की सारी शक्तियों के "निगल जाने के" चरम बिन्दु के निकट पहुंचा दिया है।

एंगेल्स १८९१ ही "दिग्विजय की होड़" को महान् ताक़तों की विदेशी नीति का एक सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण के रूप में इंगित कर सके थे, लेकिन १९१४–१९१७ में, जब कि ठीक इसी होड़ ने कई गुना बढ़कर साम्राज्यवादी युद्ध पैदा कर दिया है, अधम सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी "अपने" पूंजीपति-वर्ग के खसोटू हितों की रक्षा पर "पितृभूमि की रक्षा", "जनतंत्र और क्रान्ति की प्रतिरक्षा", आदि के फ़िक़रों से रंगामेज़ी करते हैं!

३. राज्य – उत्पीड़ित वर्ग के शोषण का अस्त्र

समाज के ऊपर स्थित, विशेष सामाजिक सत्ता को बनाये रखने के लिए टैक्सों और राजकीय ऋणों की ज़रूरत होती है।

एंगेल्स लिखते हैं: "...सामाजिक सत्ता और टैक्स-वसूली का अधिकार पाकर अफ़सर लोग समाज के निकायों की हैसियत से समाज के ऊपर हो जाते हैं। उन्हें अगर वह मुक्त, स्वेच्छापूर्ण आदर मिले भी, जो प्राचीन गोत्रात्मक (क़बायली) समाज के निकायों से सम्बद्ध था, तो उनके लिए वह अब काफ़ी नहीं रह गया है..." अफ़सरों की पवित्रता और अलंघ्यता के विशेष क़ानून बना दिये जाते हैं। "सबसे दयनीय पुलिस कर्मचारी को" भी क़बीले के प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक "प्रतिष्ठा" प्राप्त है, लेकिन समाज के "न दण्ड बलेन उपलब्ध आदर" को प्राप्त करनेवाले क़बीले के बड़े-बूढ़े से किसी सभ्य राज्य की फ़ौजी सत्ता के प्रधान को भी ईर्ष्या हो सकती है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहां राज्यसत्ता के उपकरणों के रूप में अफ़सरों की विशेषाधिकारी हैसियत का सवाल उठाया गया है। ख़ास बात के रूप में चिन्हित है: क्या चीज़ उन्हें समाज के ऊपर रख देती है? हम देखेंगे कि यह सैद्धान्तिक प्रश्न १८७१ के पेरिस कम्यून द्वारा व्यवहार में किस तरह हल किया गया था, और १९१२ में काउत्स्की द्वारा किस प्रतिक्रियावादी ढंग से उस पर पर्दा डाल दिया गया था।

"...चूंकि राज्य का जन्म वर्ग-विरोधों को क़ाबू में रखने की ज़रूरत से हुआ था, इसके साथ ही चूंकि उसका जन्म ख़ुद इन वर्गों के टकरावों के बीच हुआ था, इसलिए वह आम तौर से सबसे ताक़तवर, आर्थिक रूप से प्रभुत्वशील वर्ग का राज्य होता है, जो राज्य के ज़रिए राजनैतिक रूप से भी प्रभुत्वशील वर्ग बन जाता है और इस भांति उत्पीड़ित वर्ग के दमन और शोषण के नये साधन पा लेता है..." केवल प्राचीन और सामन्ती राज्य ही दासों और भूदासों के शोषण के अस्त्र नहीं थे, बल्कि, "आज का प्रतिनिधिमूलक राज्य भी पूंजी द्वारा उजरती श्रम के शोषण का अस्त्र है। लेकिन अपवाद के रूप में ऐसे वक़्त भी आते हैं जब संघर्षरत वर्गों की ताक़त ऐसी समतुल्यता प्राप्त कर लेती है कि राज्यसत्ता उस वक़्त के लिए दोनों वर्गों के सम्बन्ध में प्रतीयमान बिचवैया के रूप में किसी क़दर स्वाधीनता प्राप्त कर लेती है..." सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के निरंकुश राजतंत्र, फ़्रांस में प्रथम और द्वितीय साम्राज्यों की बोनापार्तशाही और जर्मनी में बिस्मार्क ऐसे ही थे।

इसमें हम अपनी तरफ़ से इतना और जोड़ दें कि जनतांत्रिक रूस की केरेन्स्की सरकार भी क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के सम्पीड़न पर उतर कर ऐसी ही बन गई है, जब कि निम्नपूंजीवादी जनवादियों के नेतृत्व की कृपा से सोवियतें निःशक्त बन चुकी हैं और पूंजीपति-वर्ग अभी इतना शक्तिशाली नहीं बन सका है कि उनको आसानी से भंग कर दे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एंगेल्स आगे कहते हैं कि जनवादी जनतंत्र में "धन अपनी सत्ता का इस्तेमाल अप्रत्यक्ष रूप से, लेकिन और भी ज़्यादा यक़ीनी तरीक़े से करता है", यानी, एक तो "अफ़सरों की सीधी मुंह-भराई" के ज़रिए (अमरीका), दूसरे "सरकार और स्टॉक-एक्सचेंज के बीच गंठजोड़" के ज़रिए (फ़्रांस और अमरीका)।

वर्तमान समय में साम्राज्यवाद और बैंकों के प्रभुत्व ने किसी भी जनवादी जनतंत्र में धन की सर्वशक्तिमत्ता की रक्षा करने और उसे जीवन में लागू करने के इन दोनों तरीक़ों को असाधारण कला में "विकसित कर दिया है"। उदाहरण के लिए रूस में जनवादी जनतंत्र के पहले ही महीनों में, कहा जा सकता है कि मिली-जुली सरकार के अन्दर पूंजीपति-वर्ग के साथ "समाजवादी" समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के परिणयवन्धन के मधुमास में अगर श्री पालचिंस्की ने पूंजीपतियों और उनकी लूट पर, उनके द्वारा फ़ौजी ठेकों के ज़रिए सरकारी ख़ज़ाने की खसोट पर लगाम लगाने की सारी कार्रवाइयों का तोड़-फोड़ किया और अगर वाद में मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा दे देनेवाले श्री पालचिंस्की (जिनकी जगह निस्सन्देह बिलकुल वैसे ही दूसरे पालचिंस्की ने ली) पूंजीपतियों द्वारा १,२०,००० रूवल सालाना वेतन के पद से "पुरस्कृत हुए", तो वह क्या है? प्रत्यक्ष रिश्वत या अप्रत्यक्ष? सिण्डीकेटों के साथ सरकार का गंठजोड़ या "केवल" मैत्रीपूर्ण संवंध? चेर्नोव और त्सेरेतेली, अव्क्सेन्त्येव और स्कोवेलेव जैसे लोग क्या भूमिका अदा करते हैं? करोड़पति-जमामारों के वे "प्रत्यक्ष" संघाती हैं या केवल अप्रत्यक्ष?

"धन" की सार्विक सत्ता जनवादी जनतंत्र में ज़्यादा यक़ीनी इसलिए भी होती है, कि वह राजनैतिक मशीनरी की अलग-अलग कमियों, पूंजीवाद के निकम्मी राजनैतिक खोल पर निर्भर नहीं होती। जनवादी जनतंत्र पूंजीवाद के लिए श्रेष्ठतम संभव राजनैतिक खोल है और इसलिए इस सर्वश्रेष्ठ खोल पर अधिकार करके (पालचिंस्की, चेर्नोव, त्सेरेतेली और मंडली की मदद से) पूंजी अपनी सत्ता को इतने मातवर ढंग से, इतनी यक़ीनी तौर से जमा लेती है कि उस पूंजीवादी-जनवादी जनतंत्र में व्यक्तियों, संस्थाओं या पार्टियों की कोई भी अदला-बदली उस सत्ता को नहीं हिला सकती।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमें यह भी नोट करना चाहिये कि एंगेल्स सार्विक मताधिकार को भी पूर्णतम स्पष्टता के साथ पूंजीवादी प्रभुत्व का अस्त्र कहते हैं। जर्मन सामाजिक-जनवाद के लम्बे अनुभव का साफ़ तौर से समाहार करके वह कहते हैं कि सार्विक मताधिकार

> "मज़दूर-वर्ग की परिपक्वता का द्योतक है। आधुनिक राज्य में वह इससे अधिक और कुछ न तो हो सकता है और न कभी होगा।"

निम्नपूंजीवादी जनवादी, जैसे कि हमारे समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक और त्यों ही उनके सगे भाई, पश्चिमी यूरोप के सभी सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी और अवसरवादी, सार्विक मताधिकार से इसी "अधिक" की आशा करते हैं। वे ख़ुद इस ग़लत विचार को मानते और जनता के दिमाग़ में भरते हैं कि मानो "आधुनिक राज्य में" सार्विक मताधिकार मेहनतकशों के बहुमत की इच्छा को सचमुच प्रगट कर सकता है और जीवन में उसकी तामील सुनिश्चित कर सकता है।

यहां हम इस ग़लत विचार को केवल इंगित कर सकते हैं, केवल यह बता सकते हैं कि "आधिकारिक" (यानी अवसरवादी) समाजवादी पार्टियों के आन्दोलन और प्रचार में हर क़दम पर एंगेल्स के बिलकुल स्पष्ट, सटीक और ठोस बयान को तोड़ा-मरोड़ा जाता है। इस विचार की सारी झुठाइयों पर, जिसको एंगेल्स ने उल्लेख करके छोड़ दिया है, ब्योरेवार प्रकाश हमने "आधुनिक" राज्य पर मार्क्स और एंगेल्स के विचारों के अपर विवरण में डाला है।

एंगेल्स अपनी सबसे लोकप्रिय रचना में अपने विचारों का सामान्य सार निम्न शब्दों में देते हैं:

> "इस तरह राज्य सदा से अस्तित्व में नहीं रहा है। ऐसे भी समाज थे, जो अपना कामकाज उसके बिना चला लेते थे, जिन्हें राज्य और राज्यसत्ता की अवधारणा नहीं थी। आर्थिक विकास की एक निश्चित अवस्था में, जो आवश्यक रूप से समाज के वर्गीय विभाजन के साथ जुड़ी हुई थी, राज्य इस विभाजन के कारण आवश्यकता बन गया। अब हम तेज़ क़दमों से उत्पादन के विकास की एक ऐसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवस्था के क़रीब पहुंच रहे हैं, जहां इन वर्गों का अस्तित्व आवश्यक ही नहीं, बल्कि उत्पादन में प्रत्यक्ष बाधा बन जाता है। वर्ग वैसे ही अनिवार्य रूप से लुप्त हो जायेंगे जैसे अनिवार्य रूप से वे अतीत में पैदा हुए थे। वर्गों के लोप के साथ अनिवार्य रूप से राज्य भी लुप्त हो जायेगा। तब समाज, जो उत्पादन का संगठन नये सिरे से उत्पादकों के स्वतंत्र और समान सहकारिता के आधार पर करेगा, राज्य की सारी मशीनरी को वहां चलता कर देगा जहां उसकी असल जगह होगी: पुरानी चीज़ों के अजायबघर में, चर्खे और कांसे की कुल्हाड़ी की बग़ल में।"

आधुनिक सामाजिक-जनवाद के प्रचार और आन्दोलन के साहित्य में यह हवाला हमें बहुधा नहीं मिलता। लेकिन जब मिलता है तब भी उसे अधिकतर इस तरह पेश किया जाता है जैसे देव-प्रतिमा के आगे शीश नवाया जा रहा हो, अर्थात् एंगेल्स के प्रति औपचारिक आदर प्रकट करने के लिए यह सोचने की कोई कोशिश किये बग़ैर कि "राज्य की सारी मशीनरी को पुरानी चीज़ों के अजायबघर" चलता कर देने की बात में कितनी व्यापक तथा गहरी क्रान्ति की पूर्वकल्पना निहित है। अधिकतर इस बात की भी समझ नहीं दिखायी देती कि एंगेल्स राज्य की मशीनरी किस चीज़ को कहते हैं।

४. राज्य का "विलोप" और बलात् क्रान्ति

राज्य के "विलोप" की बाबत एंगेल्स के शब्द इतनी व्यापक ख्याति पा चुके हैं, वे इतनी प्रायिकता से उद्धृत किये जाते हैं और अवसरवाद के तहत मार्क्सवाद के रिवाजी विकृतीकरण को इतना उभार कर प्रदर्शित करते हैं कि उन पर ब्योरे से विचार करना आवश्यक है। हम वह सारा तर्क उद्धृत करते हैं जिससे वे लिये जाते हैं:

"सर्वहारा वर्ग राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा कर लेता है और सबसे पहले उत्पादन के साधनों को राजकीय सम्पत्ति में परिवर्तित कर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देता है। लेकिन इस तरह वह सर्वहारा के रूप में अपने आप का उन्मूलन कर देता है, इस तरह वह सभी वर्ग-भेदों और वर्ग-विरोधों को और साथ ही राज्य के रूप में राज्य का भी उन्मूलन कर देता है। अब तक के समाज को, जो वर्ग-विरोधों के बीच चलता था, राज्य की, यानी शोषक वर्ग की वाह्य उत्पादन-स्थितियों को क़ायम रखने के लिए, विशेष रूप से शोषित वर्ग को वलपूर्वक तत्कालीन निश्चित उत्पादन-पद्धति के दवाव (ग़ुलामी, भूदासता, उजरती श्रम) की स्थितियों में रखने के लिए शोषक वर्ग के संगठन की आवश्यकता थी। राज्य पूरे समाज का अधिकारी प्रतिनिधि था, दृश्यमान निगम में उसका संकेन्द्रण था; लेकिन वह ऐसा सिर्फ़ वहीं तक था जहां तक वह उस वर्ग का राज्य था, जो अपने युग में अकेले पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता था: प्राचीन काल में वह ग़ुलाम-मालिक नागरिकों का राज्य था; मध्य युग में सामन्ती अभिजातों का और हमारे युग में पूंजीपति-वर्ग का। जब राज्य वास्तव में सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधि वन जाता है, तव वह अपने आप को अनावश्यक वना लेता है। जिस समय से एक भी सामाजिक वर्ग ऐसा न हो, जिसका दमन ज़रूरी हो, जिस समय से वर्ग-आधिपत्य और उत्पादन की वर्त्तमान अराजकता पर आधारित व्यक्तिगत अस्तित्व के लिए संघर्ष और उस संघर्ष से पैदा होनेवाली टक्करें और ज़्यादतियां ख़त्म हो जायेंगी, उस समय से न तो दवाकर रखने के लिए कोई चीज़ रह जायेगी, न दवाकर रखनेवाली विशेष शक्ति की, राज्य की, ज़रूरत रह जायेगी। जिस पहले काम के—समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों पर क़ब्ज़ा करने के काम के—दौरान राज्य वास्तव में पूरे समाज के प्रतिनिधि के रूप में सामने आता है, वह साथ ही साथ राज्य की हैसियत से उसका आख़िरी स्वतंत्र काम भी होता है। तव सामाजिक संबंधों में राज्यसत्ता का हस्तक्षेप एक के बाद दूसरे क्षेत्र में अनावश्यक होता जाता है और फिर अपने आप ख़त्म हो जाता है। व्यक्तियों पर शासन की जगह चीज़ों का प्रबन्ध और उत्पादन-प्रक्रिया का संचालन ले लेते हैं। राज्य "मंसूख़" नहीं होता, वह धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता है। इसी आधार पर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"स्वतंत्र जन-राज्य" की उक्ति का मूल्यांकन करना चाहिए, जो सामयिक आन्दोलनकारी का हक़दार है, लेकिन अन्तिम विश्लेषण में वैज्ञानिक रूप से निराधार है। इसी आधार पर तथाकथित अराजकतावादियों की इस भांग का भी मूल्यांकन करना चाहिए कि राज्य को तत्काल मंसूख़ कर दिया जाये।" ('ड्यूहरिंग मत-खंडन, श्री यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रान्ति', पृष्ठ ३०१–३०३, तीसरा जर्मन संस्करण।)

ग़लत-बयानी के ख़तरे से मुक्त होकर कहा जा सकता है कि एंगेल्स के इन अद्‌भुत रूप से विचार-समृद्ध तर्कों में से केवल यही आधुनिक समाजवादी पार्टियों के समाजवादी विचारों का अभिन्न अंग बन पाया है कि राज्य की "मंसूख़ी" की अराजकतावादी शिक्षा से भिन्न मार्क्स के कथनानुसार राज्य "धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता है"। मार्क्सवाद को इस प्रकार तराशना उसे अवसरवाद बना देना है, क्योंकि इस तरह की "व्याख्या" में मंद, एकरस, क्रमिक परिवर्त्तन का, छलांगों और तूफ़ानों के अभाव का, क्रान्ति के अभाव का धुंधला भाव मात्र रह जाता है। राज्य के "विलोप" की प्रचलित, व्यापक और—अगर कह सकें तो—जन-व्यापी कल्पना के मानी यदि क्रान्ति से इनकार नहीं, तो उस पर पर्दापोशी ज़रूर है।

इस तरह की "व्याख्या" मार्क्सवाद की सबसे भोंडी विकृति है, जिससे केवल पूंजीपति-वर्ग को ही फ़ायदा होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से वह उन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों और विचारों के प्रति उपेक्षा पर आधारित है, जो एंगेल्स के उन्हीं तर्कों में इंगित किये गये हैं, जिनका "निष्कर्ष" हमने ऊपर पूरे का पूरा उद्धृत किया है।

पहले, एंगेल्स इन तर्कों के शुरू में ही कहते हैं कि राज्यसत्ता पर अधिकार करके सर्वहारा वर्ग "राज्य के रूप में राज्य का उन्मूलन कर देता है"। इसका अर्थ क्या है, इसकी बाबत सोचना "नामंजूर" होता है। आम तौर से उसे या तो बिलकुल नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है या एंगेल्स की "हेगेली कमजोरी" जैसी कोई चीज़ समझ ली जाती है। वास्तव में ये शब्द संक्षेप में एक महान् सर्वहारा क्रान्ति के, १८७१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पेरिस कम्यून के अनुभव की अभिव्यक्ति करते हैं, जिसके बारे में हम यथास्थान विस्तार से विचार करेंगे। वास्तव में एंगेल्स यहां सर्वहारा क्रान्ति द्वारा पूंजीवादी राज्य के "उन्मूलन" की बात कहते हैं, जबकि राज्य के विलोप-सम्बन्धी शब्दों का वास्ता समाजवादी क्रान्ति के बाद सर्वहारा राज्यत्व के अवशेषों से है। एंगेल्स के अनुसार पूंजीवादी राज्य का विलोप नहीं होता, बल्कि क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग द्वारा वह "उन्मूलित कर दिया जाता है"। इस क्रान्ति के बाद सर्वहारा राज्य या अर्द्धराज्य का विलोप हो जाता है।

दूसरे, राज्य "दमन के लिए विशेष ताक़त" है। यहां एंगेल्स ने यह उत्तम और अत्यंत गंभीर परिभाषा अधिकतम स्पष्टता के साथ प्रस्तुत की है। और इससे यह नतीजा निकलता है कि पूंजीपति-वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग के, मुट्ठी भर अमीरों द्वारा करोड़ों मेहनतकशों के "दमन के लिए विशेष ताक़त" के स्थान पर सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति-वर्ग के "दमन के लिए विशेष ताक़त" की (सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की) स्थापना ज़रूरी है। इसी में "राज्य के रूप में राज्य का उन्मूलन" निहित है। इसी में समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों पर अधिकार करने का "काम" निहित है। और यह स्वतोप्रत्यक्ष है कि एक (पूंजीवादी) "विशेष ताक़त" के स्थान पर दूसरी (सर्वहारा वर्ग की) "विशेष ताक़त" की ऐसी स्थापना "विलोप" के रूप में किसी तरह संभव नहीं हो सकती है।

तीसरे, "विलोप" की बाबत, बल्कि और अधिक आकर्षक तथा रंगीन—"चिरसुषुप्ति" की बाबत, एंगेल्स बिलकुल निश्चित और स्पष्ट रूप से "पूरे समाज के नाम पर राज्य द्वारा उत्पादन के साधनों पर क़ब्ज़ा" के बाद, यानी समाजवादी क्रान्ति के बाद के युग के संदर्भ में बात करते हैं। हम सभी जानते हैं कि उस समय "राज्य" का राजनैतिक रूप पूर्णतम जनवाद होता है। लेकिन मार्क्सवाद की बेशरमी से तोड़-मरोड़ करनेवाले किसी भी अवसरवादी के दिमाग़ में यह बात नहीं घुसती कि एंगेल्स यहां जनवाद की ही "चिरसुषुप्ति" तथा "विलोप" की बात कर रहे हैं। पहली नज़र में यह बात बहुत विचित्र मालूम होती है; लेकिन यह "अगम्य" उन्हीं लोगों के लिए है जिन्होंने इस चीज़ पर ग़ौर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं किया है कि जनवाद भी राज्य ही है और फलतः जब राज्य मिट जायेगा तो जनवाद भी मिट जायेगा। पूंजीवादी राज्य का केवल क्रान्ति ही "उन्मूलन" कर सकती है। आम राज्य का, यानी सबसे पूर्ण जनवाद का, केवल "विलोप" हो सकता है।

चौथे, "राज्य के विलोप" की अपनी प्रसिद्ध प्रस्थापना करके एंगेल्स फ़ौरन ही ठोस तरीक़े से समझाते हैं कि यह प्रस्थापना अवसरवादियों और अराजकतावादियों के खिलाफ़ समान रूप से निर्देशित है। ऐसा करने में एंगेल्स "राज्य के विलोप" की प्रस्थापना के उस निष्कर्ष को सबसे आगे रखते हैं, जो अवसरवादियों के खिलाफ़ है।

यह बात शर्त लगाकर कही जा सकती है कि १०,००० आदमियों में से, जिन्होंने राज्य के "विलोप" के बारे में पढ़ा या सुना है, ९९९० को बिलकुल मालूम या याद नहीं है कि इस प्रस्थापना से एंगेल्स ने जो निष्कर्ष निकाले थे, वे केवल अराजकतावादियों के विरुद्ध नहीं निर्देशित थे। बाक़ी दस में से शायद नौ यह नहीं जानते कि "स्वाधीन जन-राज्य" क्या है और इस नारे पर हमले में अवसरवादियों पर हमला क्योंकर शामिल है। इस तरह इतिहास लिखा जाता है! इस तरह महान् क्रांतिकारी शिक्षा को परोक्ष रूप से जालसाज़ी करके हावी कूपमंडूकता बनाया जाता है। अराजकतावादियों के खिलाफ़ निकाले गये निष्कर्ष को हज़ारों बार दुहराया गया है, उसे भ्रष्ट किया गया है, दिमाग़ों में अधिकतम सादे रूप में ठूंसा गया है और उसने पूर्वाग्रह का रूप ले लिया है। लेकिन अवसरवादियों के खिलाफ़ निकाले गये निष्कर्ष पर पर्दा डाल दिया गया है, उसे "भुला दिया गया है"!

"स्वाधीन जन-राज्य" उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में जर्मन सामाजिक-जनवादियों की कार्यक्रम-सम्बन्धी मांग और रिवाजी नारा था। इस नारे में जनवाद की अवधारणा के आडंबरपूर्ण दक़ियानूसी वर्णन के सिवाय कोई राजनैतिक अन्तर्य नहीं है। जहां तक उसके द्वारा क़ानूनी तौर पर जनवादी जनतंत्र की ओर इशारा किया जाता था, वहां तक एंगेल्स आन्दोलनकारी दृष्टि से, उसे "सामयिक" "औचित्य प्रदान करने" को तैयार थे। लेकिन वह अवसरवादी नारा था, क्योंकि वह न केवल रंगे-चुने पूंजीवादी जनवाद की ही, बल्कि आम तौर से हर प्रकार के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्य की समाजवादी ग्रालोचना की नासमझी भी ग्रभिव्यक्त करता था। पूंजीवाद के ग्रन्तर्गत सर्वहारा वर्ग के लिये राज्य के सबसे ग्रच्छे रूप के तौर पर, हम जनवादी जनतंत्र के पक्ष में हैं, लेकिन हमें यह भूल जाने का हक़ नहीं है कि सर्वाधिक जनवादी पूंजीवादी जनतंत्र में भी उजरती ग़ुलामी जनता की क़िस्मत होती है। ग्रागे, हर प्रकार का राज्य उत्पीड़ित वर्ग के "दमन के लिये विशेष ताक़त" होता है। इसलिये हर प्रकार का राज्य ग़ैर-ग्राज़ाद ग्रौर ग़ैर-ग्रवामी होता है। पिछली शताब्दी के ग्राठवें दशक में मार्क्स ग्रौर एंगेल्स ने ग्रपने पार्टी-कामरेडों के सामने यह बात बार-बार स्पष्ट की थी।[7]

पांचवें, एंगेल्स की ख़ुद इसी पुस्तक में, जिसके राज्य के "विलोप" के तर्क को सभी याद करते हैं, बलात् क्रान्ति के महत्त्व का तर्क भी है। उसकी भूमिका का एंगेल्स द्वारा किया गया ऐतिहासिक विश्लेषण बलात् क्रांति का सचमुच क़सीदा बन जाता है। यह "कोई नहीं याद करता", ग्राधुनिक समाजवादी पार्टियों में इस विचार के महत्त्व के बारे में कुछ कहना या सोचना तक नामंज़ूर होता है, जनता के बीच रोज़मर्रा के ग्रान्दोलन ग्रौर प्रचार में इस विचार की कोई भूमिका नहीं होती। लेकिन फिर भी, वह राज्य के "विलोप" से ग्रभिन्न रूप से जुड़ा हुग्रा है।

यह रहा एंगेल्स का तर्क:

"...कि बलप्रयोग इतिहास में" (शैतानी ताक़त की भूमिका के ग्रलावा) "दूसरी भूमिका भी, यानी क्रांतिकारी भूमिका भी ग्रदा करती है, कि मार्क्स के शब्दों में वह नये को गर्भ में धारण किये हुए प्रत्येक पुराने समाज की प्रसाविका है,[8] कि यह वह ग्रस्त्र है जिसकी मदद से सामाजिक प्रगति ग्रपना मार्ग बनाती है ग्रौर मृत, ठठरे राजनैतिक ढांचों को चकनाचूर कर देती है,—इन सारी बातों के बारे में श्री ड्यूहरिंग के यहां एक शब्द भी नहीं है। केवल उसांसों ग्रौर कराहों के साथ वह इस बात की संभावना मंज़ूर करते हैं कि शोषण की ग्रार्थिक व्यवस्था का तख़्ता उलटने के लिये शायद बलप्रयोग की ज़रूरत पड़े—दुर्भाग्य से ही समझें! क्योंकि हर प्रकार का बलप्रयोग, उसके प्रयोग करनेवाले को मानो ग्राचार-भ्रष्ट कर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देता है। यह इसके बावजूद कहा जाता है कि प्रत्येक विजयी क्रान्ति के फलस्वरूप महान नैतिक और वैचारिक उत्कर्ष हुआ है! यह कहा जाता है जर्मनी में, जहां बलप्रयोगी टक्करों से, जो जनता के लिये सचमुच लाज़िमी बन सकती हैं, कम से कम यह सुविधा हो सकती है कि तीसवर्षीय युद्ध[1] के अपमान के कारण राष्ट्रीय चेतना में पैवस्त दासता की भावना ख़त्म हो जाये। और यह निस्तेज, निर्जीव, निश्शक्त पादरी-सुलभ विचार-पद्धति, अपने को इतिहास की सबसे क्रांतिकारी पार्टी के निमित्त प्रस्तुत करने का साहस करती है!"
(पृष्ठ १९३, तीसरा जर्मन संस्करण, भाग २, अध्याय ४ का अंत।)

बलात् क्रांति के इस क़सीदे का जिसकी तरफ़ एंगेल्स १८७८ से १८९४ तक, यानी बिलकुल अपने मृत्यु-काल तक, बराबर जर्मनी के सामाजिक-जनवादियों का ध्यान दिलाते रहे, राज्य के "विलोप" के सिद्धान्त के साथ एक ही शिक्षा में किस तरह एकीकरण संभव है?

आम तौर से दोनों का एकीकरण सर्वसंग्रहवाद की मदद से अविचारपूर्ण या कुतर्की ढंग से मनमाने (या सत्ताधारियों की तुष्टि के लिये) कभी एक और कभी दूसरे तर्क को चुनकर किया जाता है और अधिक नहीं तो सौ में निनान्वे बार ठीक "विलोप" को ही पहला स्थान दिया जाता है। द्वन्द्ववाद का स्थान सर्वसंग्रहवाद ले लेता है—मार्क्सवाद के संबंध में आज के आधिकारिक सामाजिक-जनवादी साहित्य में सबसे ज़्यादा आम तथा व्यापक यही व्यापार है। इस तरह की हेरी-फेरी बेशक कोई नयी चीज़ नहीं है। वह क्लासिकीय यूनानी दर्शन के इतिहास में भी पाई जाती है। मार्क्सवाद को अवसरवाद बनाने की जालसाज़ी, सर्वसंग्रहवाद को द्वन्द्ववाद बनाने की जालसाज़ी के तहत जनता को धोखा देना सबसे आसान है; उससे प्रतीयमान सन्तोष प्राप्त होता है, जैसे प्रक्रिया के हर पहलू पर, विकास की तमाम प्रवृत्तियों पर, तमाम विरोधपरक प्रभावों, आदि पर, ध्यान दिया जा रहा हो, जबकि वास्तव में वह सामाजिक विकास की प्रक्रिया की कोई भी अखंड और क्रांतिकारी समझ नहीं देता।

हम ऊपर कह चुके हैं और आगे के विवरण में और विस्तार से बतायेंगे कि बलात् क्रांति की अनिवार्यता के बारे में मार्क्स और एंगेल्स की

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा का सम्बन्ध पूंजीवादी राज्य से है। उसका स्थान सर्वहारा राज्य (सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व) "विलोप" के रास्ते नहीं ले सकता, वल्कि आम नियम के रूप में केवल बलात् क्रांति द्वारा ही ले सकता है। उसकी एंगेल्स द्वारा की गई और मार्क्स की अनेकानेक घोषणाओं से पूर्णतः मेल खानेवाली क़सीदाख़ानी – (स्मरणीय है 'दर्शन की दरिद्रता' और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के अंतिम भाग में बलात् क्रांति की अनिवार्यता की सगर्व और खुली घोषणा; स्मरणीय है १८७५ के गोथा कार्यक्रम[10] की आलोचना, जिसमें प्रायः ३० साल बाद मार्क्स ने उस कार्यक्रम की निर्ममतापूर्वक धज्जियां उड़ा दी थीं)–यह क़सीदाख़ानी किसी तरह भी "भावावेश" आलोचना नहीं है, किसी तरह भी वाग्मिता नहीं है, विवाद की शेख़ी नहीं है। बलात् क्रांति की इस और ठीक इसी दृष्टि को व्यवस्थित रूप से जनता में पोषित करने की आवश्यकता ही मार्क्स और एंगेल्स की सारी शिक्षा का आधार है। उनकी शिक्षा के साथ इस समय हावी सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी और काउत्स्कीपंथी प्रवृत्तियों की ग़द्दारी – दोनों ही द्वारा इस तरह के प्रचार और इस तरह के आन्दोलन की उपेक्षा में विशेष रूप से उभरकर सामने आती है।

सर्वहारा राज्य का पूंजीवादी राज्य की जगह लेना बलात् क्रांति के बिना असंभव है। सर्वहारा राज्य का उन्मूलन, अर्थात् आम राज्य का ही उन्मूलन, "विलोप" के रास्ते के सिवा अन्यथा असंभव है।

मार्क्स और एंगेल्स ने प्रत्येक क्रांतिकारी परिस्थिति का अलग-अलग अध्ययन करके, हर क्रांति के अनुभव के सबक़ का विश्लेषण करके, इन दृष्टियों को विस्तृत और ठोस रूप में विकसित किया। आगे हम उनकी शिक्षा के इसी असंदिग्ध रूप से, सबसे महत्त्वपूर्ण अंश पर आयेंगे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय २

राज्य और क्रांति। १८४८–१८५१ का अनुभव

१. क्रान्ति से ठीक पहले

प्रौढ़ मार्क्सवाद की पहली कृतियां 'दर्शन की दरिद्रता' और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' १८४८ की क्रांति से ठीक पहले निकलीं। इसी कारण, मार्क्सवाद के आम उसूलों के विवरण के साथ-साथ हम यहां किसी हद तक उस समय की ठोस क्रांतिकारी परिस्थिति का प्रतिविम्ब पाते हैं और इसलिये कहें कि यह देखना अधिक सार्थक होगा कि १८४८–१८५१ के अनुभव के निष्कर्षों से ठीक पहले, इन कृतियों के लेखक राज्य के संबंध में क्या कहते हैं।

'दर्शन की दरिद्रता' में मार्क्स लिखते हैं: "...विकास के दौरान मज़दूर-वर्ग पुराने पूंजीवादी समाज के स्थान पर ऐसे संगठन की स्थापना करेगा, जो वर्गों और उनके विरोधों को वाद दे देगा; सही मानों में कोई राजनैत्रिक सत्ता नहीं रह जायेगी, क्योंकि राजनैतिक सत्ता ही पूंजीवादी समाज के आन्तरिक वर्ग-विरोधों की आधिकारिक अभिव्यक्ति है।" (पृष्ठ १८२, जर्मन संस्करण, १८८५।)

वर्गों के उन्मूलन के वाद राज्य के विलोप के विचार की इस आम विवृति की मार्क्स और एंगेल्स द्वारा कुछ ही महीने वाद, यानी नवम्बर १८४७ में लिखित 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में दी गयी विवृति से तुलना करना शिक्षाप्रद होगा:

"...सर्वहारा वर्ग के विकास की सबसे आम अवस्थाओं का वर्णन करके हमने वर्तमान समाज के गर्भ में कमोबेश छिपे गृहयुद्ध

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का ठीक उस विन्दु तक अनुसरण किया है, जहां वह खुली क्रांति के रूप में बदल जाता है और सर्वहारा वर्ग पूंजीपति-वर्ग का वलात् तख़्ता उलटकर अपने आधिपत्य की नींव डालता है...

"...हम ऊपर देख चुके हैं कि क्रांति में मज़दूर-वर्ग का पहला क़दम सर्वहारा को शासक वर्ग में परिवर्त्तित (शब्दश: उत्कर्षित) करना, जनवाद की उपलब्धि करना है।

"सर्वहारा वर्ग अपने राजनैतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल इसलिये करेगा कि पूंजीपति-वर्ग से धीरे-धीरे सारी पूंजी को छीन ले, उत्पादन के सभी औज़ारों को राज्य के, अर्थात् शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा के हाथ में केन्द्रित कर दे और उत्पादन की कुल शक्तियों को अधिक से अधिक तेज़ी के साथ वढ़ा दे।" (पृष्ठ ३१ और ३७, सातवां जर्मन संस्करण, १६०६।)

यहां हम राज्य के प्रश्न पर मार्क्सवाद के एक सबसे उल्लेखनीय और सवसे महत्त्वपूर्ण विचार का, अर्थात् "सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व" के विचार का (जैसे पेरिस कम्यून के वाद से मार्क्स और एंगेल्स कहने लगे थे), सूत्रीकरण देखते हैं और उसके वाद राज्य की एक वहुत ही दिलचस्प परिभाषा देखते हैं, जो मार्क्सवाद की "विस्मृत वातों" की ही श्रेणी में आती है: "**राज्य, अर्थात् शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग**"।

आधिकारिक सामाजिक-जनवादी पार्टियों के जिस प्रचारात्मक और आन्दोलनात्मक साहित्य का बोलवाला है, उसमें राज्य की इस परिभाषा को न केवल कभी नहीं समझाया गया है, वल्कि इससे भी वढ़कर, उसे भुला दिया गया है, क्योंकि सुधारवाद के साथ उसका क़तई मेल नहीं हो सकता, वह "जनवाद के शान्तिपूर्ण विकास" के सम्वन्ध में आम अवसरवादी पूर्वाग्रहों और दक़ियानूसी भ्रांतियों के मुंह पर तमाचा है।

सर्वहारा को राज्य की ज़रूरत होती है—इसे सभी अवसरवादी, सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी और काउत्स्कीपंथी दुहराते हैं, जो विश्वास दिलाते हैं कि मार्क्स ने यही सिखाया है, लेकिन यह जोड़ना "भूल जाते हैं" कि मार्क्स के अनुसार, सबसे पहले, सर्वहारा को केवल विलुप्त हो जानेवाले

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्य की ज़रूरत होती है, अर्थात् इस प्रकार निर्मित राज्य की, जिसका अविलम्ब विलोप शुरू हो जाये और जिसका विलोप हुए विना रह न सके। दूसरे, मेहनतकशों को ऐसे "राज्य" की ज़रूरत होती है, "जो शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग हो"।

राज्य ताक़त का विशेष संगठन है, किसी वर्ग को दवाने के लिए वलप्रयोग का संगठन है। सर्वहारा वर्ग के लिए किस वर्ग को दवाना ज़रूरी है? वेशक, केवल शोषक वर्ग, यानी पूंजीपति-वर्ग को। मेहनतकशों को राज्य की ज़रूरत केवल शोषकों के प्रतिरोध के दमन के लिए होती है और अन्त तक क्रान्तिकारी रहनेवाले एकमात्र वर्ग के रूप में, पूंजीपति-वर्ग के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए, उसके पूर्ण विस्थापन के लिए सभी मेहनतकशों और शोषितों को एकतावद्ध कर सकनेवाले एकमात्र वर्ग के रूप में, उस दमन का नेतृत्व करने में उसकी तामील करने में केवल सर्वहारा वर्ग ही समर्थ है।

शोषक वर्गों को राजनैतिक प्रभुत्व की ज़रूरत है शोषण की वरक़रारी के हित में, यानी जनता के विशाल वहुमत के विरुद्ध नगण्य अल्पमत के स्वार्थपूर्ण हित में। शोषित वर्गों को राजनैतिक प्रभुत्व की ज़रूरत है हर प्रकार के शोषण के पूर्ण उन्मूलन के हित में, अर्थात् जनता के विशाल वहुमत के हित में, नगण्य अल्पमत के आधुनिक ग़ुलाम-मालिकों के, यानी ज़मींदारों और पूंजीपतियों के हित के ख़िलाफ़।

निम्नपूंजीवादी जनवादियों ने, प्रतीयमान समाजवादियों ने, वर्ग-संघर्ष को वर्ग-सामंजस्य के सपनों में देखनेवालों ने, समाजवादी रूपांतरण को भी स्वप्निल ढंग से शोषक वर्ग के प्रभुत्व के विस्थापन के रूप में नहीं, वल्कि अपने कार्यभारों को समझ चुकनेवाले वहुमत के आगे अल्पमत द्वारा शांतिपूर्ण आत्म-समर्पण के रूप में देखा। राज्य की वर्गोपरीयता की मान्यता के साथ अभिन्न रूप से संबद्ध यह निम्नपूंजीवादी कल्पना व्यवहार में मेहनतकश वर्गों के हितों के साथ ग़द्दारी का कारण वनी, जैसा कि, उदाहरण के लिए, १८४८ और १८७१ की फ़्रांसीसी क्रान्तियों के इतिहास ने, उन्नीसवीं शताव्दी के अन्त और वीसवीं के शुरू में[11] इंगलैंड, फ़्रांस, इटली तथा अन्य देशों के अन्दर पूंजीवादी मंत्रिमण्डलों में "समाजवादियों" की शिरकत से प्रगट किया भी है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस निम्नपूंजीवादी समाजवाद के ख़िलाफ़, जिसे समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक पार्टियों ने अब रूस में पुनरुज्जीवित किया है, मार्क्स अपने जीवन भर लड़े। मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष की शिक्षा को सुसंगत रूप से राजनैतिक सत्ता की, राज्य की, शिक्षा तक पहुंचा दिया।

पूंजीपति-वर्ग के शासन को उलटने का काम उस ख़ास वर्ग की हैसियत से केवल सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है, जिसके जीवन की आर्थिक परिस्थितियां उसे इस काम के लिए प्रशिक्षित करती हैं, क्षमता और शक्ति देती हैं। पूंजीपति-वर्ग जहां किसानों और सभी निम्नपूंजीवादी तबक़ों को खंडित और विभाजित करता है, वहीं वह सर्वहारा वर्ग को जमा करता है, एकताबद्ध और संगठित करता है। केवल सर्वहारा वर्ग ही—बड़े पैमाने के उत्पादन में अपनी आर्थिक भूमिका के कारण—उस तमाम श्रमजीवी और शोषित जनता का नेतृत्व कर सकता है, जिसका पूंजीपति-वर्ग सर्वहारा से कम नहीं, बल्कि अक्सर ज्यादा शोषण, उत्पीड़न और दमन करता है, लेकिन जो अपनी स्वाधीनता के लिए स्वतंत्र रूप से संघर्ष चलाने में असमर्थ होती है।

राज्य और समाजवादी क्रान्ति के संबंध में मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का मतलब अनिवार्य रूप से सर्वहारा वर्ग के राजनैतिक प्रभुत्व को, उसके अधिनायकत्व को मानना होतना है, अर्थात् उसकी ऐसी ताक़त को मानना जिसमें और किसी का हिस्सा न हो और जो सीधे-सीधे जनता की सशस्त्र शक्ति द्वारा समर्थित हो। पूंजीपति-वर्ग के अनिवार्य और घोरतम प्रतिरोध को कुचलने और नयी आर्थिक व्यवस्था की रचना के लिए तमाम श्रमजीवी और शोषित जनता को संगठित करने की क्षमता रखनेवाले शासक वर्ग के रूप में बदलकर ही सर्वहारा वर्ग पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता उलट सकता है।

शोषकों के प्रतिरोध को कुचलने के लिये भी और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के "संगठन" में आबादी के विशाल जन-समूह—किसानों निम्नपूंजीपतियों और अर्ध-सर्वहारा—का नेतृत्व करने के लिए भी, सर्वहारा वर्ग को राज्यसत्ता की, शक्ति के केन्द्रींभूत संगठन की, और बलप्रयोग के संगठन की ज़रूरत होती है।

मज़दूरों की पार्टी को शिक्षित करते हुए मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते को शिक्षित करता है, जिसमें सत्ता ग्रहण करने और तमाम

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनता को समाजवाद की तरफ़ ले जाने की, नयी व्यवस्था का संचालन और संगठन करने की, पूंजीपति-वर्ग के बिना और उसके विरुद्ध सभी मेहनतकशों और शोषितों के सामाजिक जीवन के संगठन में उनका शिक्षक, पथप्रदर्शक और नेता बनने की क्षमता है। इसके बरख़िलाफ़ वह अवसरवाद जिसका आज दौरदौरा है, मज़दूरों की पार्टी के सदस्यों को अच्छी मज़दूरी पानेवाले मज़दूरों के प्रतिनिधि बनने की शिक्षा देता है, जिनका साधारण मज़दूरों से संपर्क टूट जाता है, जिनकी ज़िन्दगी पूंजीवाद के अंतर्गत काफ़ी मज़े में "कटती" है और जो अपने जन्मसिद्ध अधिकार को चन्द टुकड़ों के लिए बेच देते हैं, अर्थात् पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध जनता की लड़ाई में क्रान्तिकारी नेतृत्व करने की अपनी भूमिका को तिलांजलि दे देते हैं।

"राज्य, अर्थात् शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग" के सम्बन्ध में मार्क्स के सिद्धान्त का, इतिहास में सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी भूमिका के सम्बन्ध में उनकी पूरी शिक्षा के साथ अटूट सम्बंध है। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व, सर्वहारा वर्ग का राजनैतिक शासन, इस भूमिका की परिणति है।

लेकिन अगर सर्वहारा वर्ग को पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध बलप्रयोग के विशेष संगठन के रूप में राज्य की ज़रूरत होती है तो उससे अपने आप निम्न निष्कर्ष निकलता है: जब तक पहले राज्य की उस मशीनरी को जिसे पूंजीपति-वर्ग ने अपने लिए बनाया है, मिटा नहीं दिया जाता, नष्ट नहीं कर दिया जाता, तब तक क्या इस प्रकार के संगठन के निर्माण की बात सोची भी जा सकती है? 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' से सीधा यही निष्कर्ष निकलता है, और १८४८–१८५१ की क्रान्ति के अनुभवों का सारांश बताते हुए मार्क्स इसी निष्कर्ष की बात करते हैं।

२. क्रान्ति के निष्कर्ष

राज्य के जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं, उसके संबंध में १८४८–१८५१ की क्रान्ति के निष्कर्ष मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर' के निम्न तर्क में दिये हैं:

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"...लेकिन क्रान्ति अपना प्रक्रम पूरा करती है। अभी वह आग में तपकर निखरने की मंज़िल से ही गुज़र रही है। वह अपना काम विधिपूर्वक करती है। २ दिसम्बर १८५१" (लूई बोनापार्त के उत्प्लव के दिन) "तक उसने अपनी तैयारी का आधा काम पूरा कर लिया था। अब वह बाक़ी आधा पूरा कर रही है। पहले उसने संसदीय सत्ता को पूर्णता तक पहुंचाया, ताकि उसका तख़्ता उलटा जा सके। अब चूंकि उसने यह काम पूरा कर लिया है, इसलिए वह **कार्यकारी सत्ता** को पूर्णता तक पहुंचाती है, उसे उसके विशुद्ध रूप में **अभिव्यक्त करती है, उसे पृथक् करती है और तमाम विनाशकारी शक्तियों को स्वयं उसके ख़िलाफ़ केन्द्रित कर देने के निमित्त उसे अपना एकमात्र** निशाना बनाकर अपने मुक़ाबले खड़ा कर रही है" (शब्दों पर ज़ोर हमारा है)। "और जब वह अपनी तैयारी के इस बाक़ी आधे काम को भी पूरा कर लेगी, तब यूरोप अपनी जगह से उछल पड़ेगा और विजयोल्लास से चिल्ला उठेगा: शाबाश, पुरानी छुछूंदर, ख़ूब जड़ खोदी!

"अपने प्रकाण्ड नौकरशाही और फ़ौजी संगठन सहित, पांच लाख सेना के साथ-साथ और पांच लाख नौकरशाहों से युक्त अपनी बहुजटिल और तरकीबी राजकीय मशीनरी सहित यह कार्यकारी सत्ता, यह भयंकर परजीवीकाया, जिसने एक जाल की तरह फ़्रांसीसी समाज के समूचे शरीर को जकड़ लिया है और उसके तमाम रन्ध्रों को अवरुद्ध कर रही है, निरंकुश राजतंत्र के दिनों में, सामन्ती व्यवस्था के उस पतन के साथ पैदा हुई थी, जिसे तेज़तर बनाने में उसने मदद दी।" पहली फ़्रांसीसी क्रान्ति ने केन्द्रीयकरण को बढ़ाया था, "लेकिन साथ ही सरकारी सत्ता के आकार, विशेषताओं और सरकारी सत्ता के समर्थकों की संख्या को भी बढ़ाया था। इस राजकीय मशीनरी को नेपोलियन ने पूर्णता तक पहुंचाया।" वैध राजतंत्र और जुलाई के राजतंत्र ने "श्रम-विभाजन को बढ़ाने के अलावा उसमें और कोई इज़ाफ़ा नहीं किया...

"...अन्त में, संसदीय जनतंत्र को अपने क्रान्ति-विरोधी संघर्ष में दमन की कार्रवाइयों के साथ-साथ सरकारी सत्ता के साधनों और

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केन्द्रीयकरण को मज़बूत करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस मशीनरी को ध्वंस करने के बजाय तमाम क्रान्तियों ने उसका निष्पादन किया" (शब्दों पर ज़ोर हमारा है)। "जिन पार्टियों ने बारी बारी से प्रभुत्व के लिए संघर्ष किया, वे राज्य के इस बृहतकाय भवन पर क़ब्ज़े को अपनी विजय की मुख्य उपलब्धि मानती थीं" ('लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर', पृष्ठ ९८–९९, चतुर्थ संस्करण, हैम्बर्ग, १९०७)।

यह उल्लेखनीय तर्क 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की तुलना में मार्क्सवाद का बहुत बड़ा अग्रसर क़दम है। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में राज्य के प्रश्न की अभी अत्यंत अमूर्त रूप में, बिलकुल आम शब्दों और अभिव्यक्तियों में ही व्याख्या की गयी थी। ऊपर उद्धृत अंश में प्रश्न पर ठोस ढंग से विचार किया गया है, और निष्कर्ष बिलकुल सटीक, निश्चित, व्यावहारिक और प्रत्यक्ष है: आज तक जितनी क्रान्तियां हुई हैं, उन्होंने राज्य की मशीनरी को निष्पन्न बनाया है, जबकि ज़रूरत है उसे नष्ट करने की, तोड़ देने की।

राज्य के मार्क्सवादी सिद्धान्त का यही निष्कर्ष मुख्य और बुनियादी है। और ठीक इसी बुनियादी बात को तमाम प्रभुत्वशाली आधिकारिक सामाजिक-जनवादी पार्टियों ने न केवल पूर्ण रूप से भुला दिया है, बल्कि (जैसा कि हम बाद में देखेंगे) दूसरे इंटरनेशनल के प्रमुख सिद्धान्ताचार्य, का० काउत्स्की ने **विकृत कर दिया है।**

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' इतिहास का आम सारांश प्रस्तुत करता है, जो हमें राज्य को वर्ग-शासन का निकाय मानने के लिए मजबूर करता है और इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि पहले राजनैतिक सत्ता पर क़ब्ज़ा किये बिना, राजनैतिक आधिपत्य क़ायम किये बिना, राज्य को "शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा" का रूप दिये बिना सर्वहारा वर्ग पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता नहीं उलट सकता; और यह सर्वहारा राज्य अपनी विजय के फ़ौरन ही बाद धीरे-धीरे विलुप्त होने लगेगा, क्योंकि ऐसे समाज में राज्य अनावश्यक है और नहीं रह सकता जिसमें वर्ग-विरोध नहीं हैं। यहां यह प्रश्न नहीं उठाया गया है कि ऐतिहासिक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विकास की दृष्टि से पूंजीपति-वर्ग के राज्य का स्थान सर्वहारा वर्ग का राज्य किस प्रकार लेगा।

मार्क्स इसी सवाल को १८५२ में उठाते हैं और उसका उत्तर देते हैं। अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के प्रति वफ़ादार, मार्क्स क्रान्ति के १८४८ से १८५१ तक के महान वर्षों के अनुभव को अपने उत्तर का आधार बनाते हैं। दूसरे सब स्थानों की तरह यहां भी उनकी शिक्षा अनुभव का ही सारांश है, जो उनकी गंभीर दार्शनिक वैश्व-दृष्टि और इतिहास के अगाध ज्ञान से आलोकित है।

राज्य के प्रश्न को ठोस रूप में रखा गया है: पूंजीपति-वर्ग का राज्य, पूंजीपति-वर्ग के प्रभुत्व के लिए आवश्यक राजकीय मशीनरी, ऐतिहासिक रूप से किस प्रकार उत्पन्न हुई? पूंजीवादी क्रान्तियों के दौरान और उत्पीड़ित वर्गों की स्वतंत्र कार्रवाइयों के सामने उसके अन्दर क्या क्या परिवर्तन हुए, क्या क्या क्रमोन्नति हुई? राज्य की इस मशीनरी के संबंध में सर्वहारा वर्ग के क्या क्या कार्यभार हैं?

केन्द्रीयकृत राज्यसत्ता, जो पूंजीवादी समाज की विशेषता है, निरंकुशता के पतन के युग में उत्पन्न हुई थी। राज्य की इस मशीनरी के लिए दो संस्थाएं ख़ास तौर पर लाक्षणिक हैं: नौकरशाही और स्थायी फ़ौज। अपनी रचनाओं में मार्क्स और एंगेल्स ने बार-बार कहा है कि ये संस्थाएं हज़ारों सूत्रों से पूंजीपति-वर्ग के साथ बंधी हुई हैं। हर मज़दूर का अनुभव इस संबंध को बहुत ही साफ़ और ज़ोरदार ढंग से ज़ाहिर करता है। इस संबंध को देखना मज़दूर-वर्ग स्वयं अपने कटु अनुभव से सीखता है। यही कारण है कि वह उस सिद्धान्त को इतनी आसानी से ग्रहण और इतनी सम्पूर्णता से हृदयंगम कर लेता है, जो इस अनिवार्य सम्बंध पर प्रकाश डालता है; जिस सिद्धान्त को निम्नपूंजीवादी जनवादी या तो अज्ञानता या ग़ैर-संजीदगी के कारण अस्वीकार करते हैं, या और भी ग़ैर-संजीदगी से "आम तौर से" मान लेते हैं, लेकिन तदनुकूल व्यावहारिक परिणाम निकालना भूल जाते हैं।

नौकरशाही और स्थायी फ़ौज पूंजीवादी समाज के शरीर पर "परजीवीकाया" हैं, जो उस समाज को छिन्न-भिन्न करनेवाले आन्तरिक विरोधों से पैदा हुई हैं, लेकिन जो उसके जीवन के तमाम प्राणदायी रन्ध्रों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को "अवरुद्ध कर रही है"। इस विचार को कि राज्य परोपजीवीकाया है, आधिकारिक सामाजिक-जनवादी क्षेत्रों में फैला हुआ आजकल का काउत्स्कीवादी अवसरवाद अराजकतावाद की ख़ास और निजी विशेषता समझता है। स्वाभाविक ही है कि मार्क्सवाद को इस ढंग से तोड़ना-मरोड़ना उन कूपमंडूकों के लिए बहुत उपयोगी है, जिन्होंने साम्राज्यवादी युद्ध पर "पितृभूमि की रक्षा" की अवधारणा को लागू करके, उसे सजा-बनाकर न्यायोचित ठहराने की अपनी कोशिशों द्वारा समाजवाद को अश्रुतपूर्व हद तक लांछित कर दिया है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि यह तोड़-मरोड़ ही है।

सामन्तवाद के पतन के बाद से यूरोप में जितनी ढेर सी पूंजीवादी क्रान्तियां हुई हैं, उन सब के दौरान नौकरशाही और फ़ौज की मशीनरी का विकास, सुधार और सुदृढ़ीकरण जारी रहा है। उदाहरण के लिए, निम्नपूंजीपति-वर्ग के ही लोग बड़े पूंजीपति-वर्ग के पक्ष में आकर्षित होते हैं और इसी मशीनरी के ज़रिए बहुत हद तक उसके मातहत बन जाते हैं, जो किसानों के ऊपरी तबक़ों, छोटे कारीगरों, व्यापारियों और इसी तरह के दूसरे लोगों को अपेक्षाकृत अधिक आरामदेह, शान्तिपूर्ण और इज़्ज़त की नौकरियां मुहैया कर देती है, जो इन लोगों को साधारण जनता के ऊपर उठा देती है। देखिए कि २७ फ़रवरी, १९१७[12] के बाद के छः महीनों में रूस में क्या हुआ? जो सरकारी नौकरियां पहले तरजीहन यमदूत-सभाइयों को दी जाती थीं, वे अब कैडेटों[13], मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों का माले-ग़नीमत बन गईं। कोई गंभीर सुधार लागू करने की बात वास्तव में किसी ने नहीं सोची है; हर तरह से कोशिश की जाती कि उन्हें "संविधान सभा के बुलाये जाने तक" स्थगित कर दिया जाये; और संविधान सभा के बुलाने को युद्ध के अन्त तक धीरे-धीरे टाल दिया जाये! लेकिन माले-ग़नीमत के हिस्से-बांट के संबंध में, मंत्रियों, उप-मंत्रियों, गवर्नर-जनरलों, आदि के आरामदेह पद हथियाने के संबंध में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं किया गया; उनके संबंध में संविधान सभा की कोई प्रतीक्षा नहीं की गयी! सरकार बनाने में जोड़-तोड़ का जो नाटक खेला गया है, वह सारतः "माले-ग़नीमत" के उस बंटवारे और पुनः बंटवारे की ही अभिव्यक्ति थी, जो देश भर में,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीचे से ऊपर तक, केन्द्रीय और स्थानीय प्रशासन के प्रत्येक विभाग में चलती रही है। २७ फ़रवरी से २७ अगस्त, १९१७ तक के छः महीनों का कुल परिणाम प्रत्यक्ष है: सुधारों को ताक़ पर रख दिया गया, सरकारी नौकरियों का हिस्से-बांट पूरा कर लिया गया और उस हिस्से-बांट के संबंध में जो "ग़लतियां" हुईं, उनको चन्द दुवारा बंटवारों के ज़रिए सुधार लिया गया।

लेकिन नौकरशाही की मशीनरी को विभिन्न पूंजीवादी और निम्न-पूंजीवादी पार्टियों के बीच (रूस का उदाहरण लें तो कैडेटों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के बीच) जितनी ही अधिक बार "फिर से बांटा जाता है", उतनी ही स्पष्टता के साथ उत्पीड़ित वर्ग और उसका नेतृत्व करनेवाला सर्वहारा वर्ग सम्पूर्ण पूंजीवादी समाज के प्रति अपनी अमिट शत्रुता की बात को समझने लगते हैं। यही कारण है कि तमाम पूंजीवादी पार्टियों के लिए – अधिक से अधिक जनवादी और "क्रान्तिकारी-जनवादी" पार्टियों के लिए भी – आवश्यक होता है कि वे क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के ख़िलाफ़ दमन की कार्रवाइयों को तीव्र करें, दमन की मशीनरी, यानी राज्य की मशीनरी, को और मज़बूत बनायें। घटनाओं का यह चक्र क्रान्ति को मजबूर करता है कि वह राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ "तमाम विनाशकारी ताक़तों को संकेन्द्रित कर दे" और राज्य की मशीनरी को सुधारने का नहीं, बल्कि उसे तहस-नहस और ख़त्म करने का उद्देश्य रखे।

समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत करने की प्रेरणा तार्किक विवेचन से नहीं, बल्कि घटनाओं के वास्तविक विकास से, १८४८–१८५१ के सजीव अनुभव से मिली। मार्क्स किस हद तक ऐतिहासिक अनुभव के ठोस आधार पर दृढ़ रहते थे, इस बात को इस तथ्य से देखा जा सकता है कि १८५२ में अभी उन्होंने इस प्रश्न को ठोस रूप में पेश नहीं किया था कि नष्ट की जानेवाली राजकीय मशीनरी का स्थान कौनसी चीज़ लेगी। अनुभव ने तब तक ऐसे प्रश्न के लिए सामग्री नहीं प्रदान की थी; इस प्रश्न को इतिहास ने बाद को, १८७१ में जाकर कार्यसूची में रखा। १८५२ में प्राकृतिक-ऐतिहासिक आलोचना की अचूकता के साथ केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि सर्वहारा क्रांति राज्यसत्ता के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ख़िलाफ़ "तमाम विनाशकारी ताक़तों को संकेन्द्रित कर देने" के कार्यभार, राज्य की मशीनरी को "ध्वंस करने" के कार्यभार के निकट आयी है।

यहां सवाल उठ सकता है: क्या यह उचित है कि मार्क्स के अनुभव, आलोचनाओं और निष्कर्षों को एक आम नियम मानकर उन्हें एक ऐसे क्षेत्र में लागू किया जाये जो १८४८ से १८५१ तक के तीन वर्षों के फ़्रांसीसी इतिहास से कहीं अधिक विस्तृत है? इस सवाल की छानबीन के लिए पहले एंगेल्स की एक उक्ति को याद करें और तब तथ्यों की ओर बढ़ें।

'अठारहवीं ब्रूमेर' के तीसरे संस्करण की अपनी भूमिका में एंगेल्स ने लिखा था:

"...किसी भी अन्य देश से अधिक फ़्रांस में ही ऐतिहासिक वर्ग-संघर्षों को हर बार निर्णयकारी अन्त तक लड़ा गया। फलत: वहां जिन बदलते हुए राजनैतिक रूपों के अन्दर वे वर्ग-संघर्ष हुए थे और जिनमें उनके परिणामों का सार व्यक्त हुआ था, उनके ख़ाके अधिक से अधिक नुमायां तौर से नक़्श हैं। मध्य युग में सामन्त-वाद के केन्द्र, नवजागरण काल के बाद सामाजिक तबक़ों पर आधारित समरूप राजतंत्र के आदर्श देश, फ़्रांस ने अपनी महान् क्रांति द्वारा सामन्तवाद को मिटा दिया और पूंजीपति-वर्ग का शासन ऐसी क्लासिकीय शुद्धता के साथ क़ायम कर दिया, जिसका उदाहरण दूसरे किसी भी यूरोपीय देश में नहीं मिलता। और शासक पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध ऊपर उठने के लिए प्रयत्नशील सर्वहारा वर्ग का संघर्ष भी यहां जितने तीव्र रूप में प्रकट हुआ, वह और कहीं नहीं देखा गया" (पृष्ठ ४, १९०७ का संस्करण)।

अन्तिम उक्ति अब पुरानी पड़ गयी है, क्योंकि १८७१ के बाद से फ़्रांसीसी सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी संघर्ष में ठहराव आ गया है, लेकिन यह ठहराव चाहे जितना भी लम्बा क्यों न हो, उससे इस बात की संभावना नहीं मिटती कि आनेवाली सर्वहारा क्रांति में फ़्रांस निर्णयकारी अन्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक पहुंचानेवाले वर्ग-संघर्ष के क्लासिकीय देश के रूप में प्रकट हो सकता है।

लेकिन आइये, उन्नत देशों के उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरंभ के इतिहास पर सरसरी नजर डालें। हम देखेंगे कि अधिक धीरे-धीरे और अधिक भिन्न-भिन्न रूपों में, कहीं अधिक व्यापक क्षेत्र में वही प्रक्रिया चालू रही : एक तरफ़ तो जैसे जनतांत्रिक देशों (फ़्रांस, अमरीका, स्विट्ज़रलैंड), वैसे ही राजतंत्रों (इंगलैंड, कुछ हद तक जर्मनी, इटली तथा स्कैंडीनेवियन देशों) में "संसदीय सत्ता" का विकास, और दूसरी तरफ़, पूंजीवादी समाज की बुनियादों के अपरिवर्तित रहते हुए सरकारी पदों के माले-ग़नीमत का बार-बार बंटवारा करनेवाली विभिन्न पूंजीवादी और निम्नपूंजीवादी पार्टियों के बीच सत्ता के लिए संघर्ष, — अन्त में, "कार्यकारी सत्ता" की, उसकी नौकरशाही और फ़ौजी मशीनरी की निष्पत्ति और संहति।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये विशेषताएं पूंजीवादी राज्यों के सम्पूर्ण आधुनिक विकास में आम हैं। १८४८ से १८५१ तक के तीन वर्षों में फ़्रांस ने विकास की उन्हीं प्रक्रियाओं को त्वरित, तीव्र और संकेन्द्रित रूप में प्रदर्शित किया था, जो सम्पूर्ण पूंजीवादी दुनिया की विशेषता है।

ख़ास तौर से साम्राज्यवाद ने, बैंक-पूंजी के युग ने, विशाल पूंजीवादी इजारेदारियों के युग ने, एकाधिकारी पूंजीवाद के राजकीय-एकाधिकारी पूंजीवाद में परिवर्त्तन के युग ने — जैसे राजतांत्रिक वैसे ही स्वतंत्र से स्वतंत्र जनतांत्रिक देशों में सर्वहारा वर्ग के ऊपर दमन की बढ़ती हुई कार्रवाइयों के सम्बंध में "राज्य की मशीनरी" की असाधारण बलवृद्धि और उसकी नौकरशाही और फ़ौजी मशीनरी की अभूतपूर्व वृद्धि प्रदर्शित की है।

विश्व-इतिहास आज निस्सन्देह सर्वहारा क्रान्ति की "तमाम शक्तियों को" राज्य की मशीनरी के "ध्वंस" पर १८५२ की अपेक्षा अतुलनीय रूप से अधिक व्यापक पैमाने पर "संकेन्द्रित" कर रहा है।

उसके स्थान में सर्वहारा वर्ग किस चीज़ की स्थापना करेगा, इसका संकेत हमें पेरिस कम्यून द्वारा उपस्थित की गयी अत्यन्त शिक्षाप्रद सामग्री में मिलता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३. मार्क्स ने १८५२ में प्रश्न को किस तरह पेश किया था*

१९०७ में मेहरिंग ने «*Neue Zeit*» नामक पत्रिका में[14] (XXV, २, पृष्ठ १६४) मार्क्स द्वारा ५ मार्च १८५२ को वेडेमेयर के नाम लिखे गये एक पत्र के कुछ अंश प्रकाशित किये थे। इस पत्र में, अन्य तर्कों के अलावा आगे का उल्लेखनीय तर्क भी शामिल है:

> "जहां तक मेरा सम्बन्ध है, आधुनिक समाज में वर्गों के अस्तित्व या उनके आपसी संघर्ष को ढूंढ़ निकालने का श्रेय मुझे नहीं है। मुझसे वहुत पहले पूंजीवादी इतिहासकार इस वर्ग-संघर्ष के ऐतिहासिक विकास का और पूंजीवादी अर्थशास्त्री वर्गों की आर्थिक वनावट का वर्णन कर चुके थे। जो कुछ मैंने नया किया, वह यह सावित करना था कि: (१) वर्गों का अस्तित्व केवल उत्पादन के विकास की ख़ास ऐतिहासिक मंज़िलों से (historische Entwicklungsphasen der Produktion) ही जुड़ा होता है; (२) वर्ग-संघर्ष का आवश्यक परिणाम सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व होता है; (३) स्वयं यह अधिनायकत्व केवल सभी वर्गों के अन्त और वर्ग-विहीन समाज में संक्रमण होता है..."

इन शब्दों में मार्क्स पहले तो वहुत स्पष्टता से, अपने और पूंजीपति-वर्ग के प्रमुख और सवसे गंभीर विचारकों के सिद्धान्तों के मुख्य और वुनियादी अन्तर, और दूसरे, राज्य के संवंध में अपने सिद्धान्त का सार व्यक्त करने में सफल हुए थे।

अक्सर कहा और लिखा जाता है कि मार्क्स की शिक्षा में मुख्य वात वर्ग-संघर्ष है। लेकिन यह ग़लत है और इसी ग़लती का नतीजा वहुत अक्सर मार्क्सवाद की अवसरवादी तोड़-मरोड़ और पूंजीपति-वर्ग के लिए मान्य भावना में मिथ्या व्याख्या होता है। चूंकि वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त की सृष्टि मार्क्स ने नहीं, वल्कि मार्क्स से पहले पूंजीपति-वर्ग ने की थी और

---

*दूसरे संस्करण में जोड़ा गया। – सं०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आम तौर से वह पूंजीपतियों को मान्य है। जो लोग केवल वर्ग-संघर्ष को मानते हैं, वे अभी मार्क्सवादी नहीं हैं, वे संभवतः अभी पूंजीवादी चिन्तन और पूंजीवादी राजनीति के दायरे में ही चक्कर काट रहे हैं। मार्क्सवाद को वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त तक ही सीमित करने के मानी हैं मार्क्सवाद की काट-छांट करना, उसको तोड़ना-मरोड़ना, उसे एक ऐसी चीज़ बना देना है जो पूंजीपति-वर्ग को मान्य हो। मार्क्सवादी केवल वही है, जो वर्ग-संघर्ष की मान्यता को सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की मान्यता तक ले जाता है। मार्क्सवादी और एक साधारण निम्न (और बड़े) पूंजीपति के बीच सबसे गंभीर अंतर यही है। यही वह कसौटी है जिसपर मार्क्सवाद की वास्तविक समझ और मान्यता की परीक्षा की जानी चाहिए। और यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस प्रश्न को यूरोप के इतिहास ने जब व्यावहारिक रूप में मज़दूर-वर्ग के सामने रखा, तो न केवल तमाम अवसरवादी और सुधारवादी, बल्कि तमाम "काउत्स्कीवादी" भी (वे लोग जो मार्क्सवाद और सुधारवाद के बीच ढुलमुल होते रहते हैं) सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को अस्वीकार करनेवाले दयनीय कूपमण्डूक और निम्नपूंजीवादी जनवादी साबित हुए। काउत्स्की की पुस्तिका, 'सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व', जो १९१८ के अगस्त में, यानी प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम संस्करण के बहुत दिनों बाद प्रकाशित हुई थी, शब्दों में मार्क्सवाद को स्वीकार करने का ढोंग करते हुए, व्यवहार में निम्नपूंजीवादी ढंग से उसे तोड़ने-मरोड़ने और उसके साथ घृणित ग़द्दारी करने का एक बेमिसाल उदाहरण है (पेत्रोग्राद और मास्को से १९१८ में प्रकाशित मेरी पुस्तिका, 'सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की' देखिये)।

अपने प्रमुख प्रतिनिधि, भूतपूर्व मार्क्सवादी, का० काउत्स्की के रूप में, वर्त्तमान अवसरवाद मार्क्स द्वारा वर्णित पूंजीवादी स्थिति की पूर्वोक्त चारित्रिकता से मेल खाता है, क्योंकि यह अवसरवाद वर्ग-संघर्ष की स्वीकृति को पूंजीवादी सम्बंधों के क्षेत्र तक ही सीमित करता है। (इस क्षेत्र के भीतर, उसके ढांचे के भीतर, वर्ग-संघर्ष को "उसूली तौर से" मानने से एक भी शिक्षित उदारतावादी इनकार नहीं करेगा!) अवसरवाद वर्ग-संघर्ष की स्वीकृति को उसके मुख्य बिन्दु तक, पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण तक, पूंजीपति-वर्ग की तख़्ता-उलटाई और उसके पूर्ण उन्मूलन तक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं ले जाता। वास्तव में यह काल लाज़िमी तौर से वर्ग-संघर्ष की अभूतपूर्व कठोरता, उसके रूपों की अपूर्व तीव्रता का काल होता है। इसलिए इस काल में राज्य को भी लाज़िमी तौर से नये ढंग का जनवादी (सर्वहारा वर्ग और आम सम्पत्तिहीनों के लिए) और नये ढंग का अधिनायकीय (पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध) राज्य होना चाहिए।

आगे। राज्य के सम्बंध में मार्क्स की शिक्षा के सार को केवल उन्हीं लोगों ने आत्मसात किया, जिन्होंने समझा है कि एक वर्ग का अधिनायकत्व न केवल आम तौर से प्रत्येक वर्ग-समाज के लिए ज़रूरी है, न केवल पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता उलट देनेवाले सर्वहारा वर्ग के लिए ज़रूरी है, बल्कि उस पूरे ऐतिहासिक युग के लिए भी ज़रूरी है, जो पूंजीवाद और "वर्ग-विहीन समाज", कम्युनिज़्म के बीच पड़ता है। पूंजीवादी राज्यों के रूप अनेक हैं, लेकिन उनका सार एक है: वे सभी राज्य, चाहे उनके रूप जैसे भी हों, अन्तिम विश्लेषण में अनिवार्यतः पूंजीपति-वर्ग का अधिनायकत्व होते हैं। पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण निश्चित रूप से अनेक विभिन्न और बहुतेरे राजनैतिक रूपों की सृष्टि करेगा, लेकिन उनका सार अनिवार्य रूप से एक होगा: सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय ३

राज्य और क्रान्ति। १८७१ के पेरिस कम्यून का अनुभव। मार्क्स का विश्लेषण

१. कम्यूनार्डों के प्रयत्न की वीरता किस बात में थी?

मालूम है कि कम्यून से कुछ महीने पहले, १८७० की पतझड़ में, मार्क्स ने पेरिस के मज़दूरों को चेतावनी दी थी कि सरकार को उस समय उलटने का प्रयत्न करना निराशा की मूर्खता होगी[15]। लेकिन १८७१ के मार्च में जब मज़दूरों पर एक निर्णयकारी लड़ाई जबर्दस्ती थोप दी गयी और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया, जब विद्रोह ने वास्तविकता का रूप ले लिया, तब बुरे लक्षणों के बावजूद मार्क्स ने सर्वहारा क्रान्ति का दिल खोलकर स्वागत किया। मार्क्स ने मार्क्सवाद के उस कुख्यात रूसी ग़द्दार प्लेख़ानोव की तरह पण्डिताऊ ढंग से "असामयिक" आन्दोलन की निन्दा नहीं की जिन्होंने १९०५ के नवम्बर में तो मज़दूरों और किसानों के संघर्षों के सम्बंध में प्रोत्साहन की भावना से लेख लिखे, लेकिन दिसम्बर १९०५ के बाद उदारतावादियों की तरह चिल्लाने लगे: "हथियार नहीं उठाना चाहिए था"।

लेकिन मार्क्स का उत्साह केवल कम्यूनार्डों की वीरता के ही बारे में नहीं था, जिन्होंने उनके शब्दों में "आकाश पर हल्ला बोल दिया था"[16]। यद्यपि जन-क्रान्तिकारी आन्दोलन अपना लक्ष्य नहीं सिद्ध कर सका था, फिर भी वह उसे अत्यधिक महत्त्व का ऐतिहासिक अनुभव, विश्व-सर्वहारा क्रांति का निश्चित अग्रसर क़दम मानते थे, ऐसा अमली क़दम, जो सैकड़ों कार्यक्रमों तथा तर्कों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस अनुभव का विश्लेषण करना, कार्यनीति के लिए उससे सबक़ निकालना, उसके आधार पर अपने सिद्धान्तों की पुनःपरीक्षा करना — मार्क्स ने यही अपना कार्यभार निर्धारित किया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में जो एकमात्र "सुधार" करने की आवश्यकता मार्क्स ने समझी थी, उसे उन्होंने पेरिस के कम्यूनार्डों के क्रान्तिकारी अनुभव के आधार पर किया था।

'कम्युनिस्ठ घोषणापत्र' के दोनों लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित उसके नये जर्मन संस्करण की अन्तिम भूमिका पर २४ जून, १८७२ की तारीख़ है। इस भूमिका में उसके लेखक, कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स कहते हैं कि 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का कार्यक्रम अब "कुछ बातों में पुराना पड़ गया है"। वे आगे कहते हैं:

"...कम्यून ने ख़ास तौर से यह साबित कर दिया कि 'मज़दूर-वर्ग राज्य की बनी-बनायी मशीनरी पर महज़ क़ब्ज़ा करके उसे अपने लक्ष्यों के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता'..."

इस उक्ति में जो शब्द इकहरे उद्धरण-चिन्हों के भीतर दिये गये हैं, उन्हें लेखकों ने मार्क्स की पुस्तक 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' से लिया था।

अतः, पेरिस कम्यून के एक मुख्य और बुनियादी सबक़ को मार्क्स और एंगेल्स ने इतने ज़बर्दस्त महत्त्व का समझा कि उन्होंने उसे 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में एक बुनियादी सुधार के रूप में शामिल कर लिया।

यह बेहद लाक्षणिक बात है कि अवसरवादियों ने ठीक इसी बुनियादी सुधार को तोड़ा-मरोड़ा है और शायद उसका अर्थ 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के अगर सौ में से निनान्वे नहीं, तो दस में से नौ पाठकों को तो नहीं ही मालूम है। इस तोड़-मरोड़ की ब्योरेवार चर्चा हम आगे, ख़ास तौर से तोड़-मरोड़ों से संबंधित अध्याय में करेंगे। यहां पर इतना ही उल्लेख कर देना काफ़ी होगा कि हमारे द्वारा उद्धृत मार्क्स के इस प्रसिद्ध कथन की प्रचलित, भ्रष्ट "अवधारणा" यह है कि मार्क्स ने मानो उसमें सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के मुक़ाबले में धीरे-धीरे विकास के विचार पर ज़ोर दिया हो, इत्यादि।

वास्तव में **बात बिलकुल उल्टी है**। मार्क्स का विचार है कि मज़दूर-वर्ग को "राज्य की बनी-बनाई मशीनरी" को **तोड़ देना चाहिए**, उसे **ध्वंस कर देना चाहिए**, उसपर केवल क़ब्ज़ा करके ही बस नहीं करना चाहिए।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१२ अप्रैल, १८७१ को, यानी ठीक कम्यून के ही दिनों में, मार्क्स ने कुगेलमन को लिखा था:

"...अगर तुम मेरे 'अठारहवीं ब्रूमेर' के अन्तिम अध्याय को पढ़ो, तो देखोगे कि मैंने कहा है कि फ़्रांसीसी क्रान्ति का अगला प्रयत्न पहले की तरह नौकरशाही-फ़ौजी मशीनरी को एक के हाथ से दूसरे के हाथ में अंतरित कर देने का नहीं, बल्कि उसे **ध्वंस कर देने** का होगा" (शब्दों पर स्वयं मार्क्स ने जोर दिया है; मूल शब्द है zerbrechen), "और यूरोपीय महाद्वीप में प्रत्येक वास्तविक जन-क्रान्ति की यही प्रारंभिक शर्त है। और पेरिस के हमारे वीर पार्टी कामरेड यही करने की कोशिश कर रहे हैं।" (*«Neue Zeit»*, XX, १, १९०१–१९०२, पृष्ठ ७०९।) (कुगेलमन के नाम लिखे गये मार्क्स के पत्रों के रूसी भाषा में कम से कम दो संस्करण निकल चुके हैं, जिनमें से एक संस्करण के सम्पादन और भूमिका-लेखन का काम मैंने किया था।)

"राज्य की नौकरशाही-फ़ौजी मशीनरी को ध्वंस करना"–ये शब्द क्रान्ति के दौरान् राज्य के बारे में सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों के संबंध में मार्क्सवाद की मुख्य शिक्षा को संक्षेप में व्यक्त करते हैं। और मार्क्सवाद की छाई हुई काउत्स्कीवादी "व्याख्या" में ठीक इसी चीज़ को न केवल पूर्ण रूप से भुला दिया गया है, बल्कि स्पष्ट रूप से तोड़-मरोड़ दिया गया है!

जहां तक 'अठारहवीं ब्रूमेर' के सम्बन्ध में मार्क्स के हवाले की बात है, उसके उस अंश को हम ऊपर पूरे का पूरा उद्धृत कर चुके हैं।

मार्क्स के ऊपर उद्धृत तर्कों में दो ख़ास बातों पर ध्यान देना दिलचस्प होगा। पहली, वह अपने निष्कर्षों को केवल यूरोपीय महाद्वीप तक ही सीमित रखते हैं। १८७१ में ऐसा करना समझ में आता है, जब इंगलैंड अभी शुद्ध पूंजीवादी देश का आदर्श बना हुआ था, लेकिन बिना सैन्यवादी गुट के और काफ़ी हद तक बिना नौकरशाही के। इसलिए, मार्क्स ने इंगलैंड को अलग कर दिया था, जहां "राज्य की बनी-बनाई मशीनरी"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को तोड़ने की प्रारंभिक शर्त के बिना भी क्रान्ति, जन-क्रान्ति तक, उस समय संभव प्रतीत होती थी और संभव भी थी।

आज, १९१७ में, प्रथम साम्राज्यवादी महायुद्ध के युग में, मार्क्स द्वारा बताया गया यह अपवाद सही नहीं रह गया है। आज तो इंगलैंड और अमरीका दोनों — इस अर्थ में तमाम दुनिया के अन्दर एंग्लो-सेक्सन "आज़ादी" के सबसे बड़े और अन्तिम प्रतिनिधि कि वहां सैन्यवादी गुट और नौकरशाही नहीं थी, — उन नौकरशाही-फ़ौजी संस्थाओं के अखिल यूरोपीय गन्दे ख़ूनी दलदल में पूर्णतः डूबे गये हैं, जिन्होंने हर चीज़ को अपने आधीन कर लिया है और जो हर चीज़ को अपने पैरों तले रौंद रही हैं। आज इंगलैंड और अमरीका दोनों में, "प्रत्येक वास्तविक जन-क्रान्ति की प्रारंभिक शर्त" "राज्य की बनी-बनाई मशीनरी को" (जिन्हें इन देशों में १९१४ और १९१७ के दौरान "यूरोपीय", आम साम्राज्यवादी मापदंड के अनुसार पूर्णता तक पहुंचा दिया गया है) ध्वंस करना, नष्ट कर देना है।

दूसरे, मार्क्स के इस अत्यंत अर्थपूर्ण कथन पर ख़ास तौर से ध्यान दिया जाना चाहिए कि राज्य की नौकरशाही-फ़ौजी मशीनरी को नष्ट करना "प्रत्येक वास्तविक जन-क्रान्ति की प्रारम्भिक शर्त" है। "जन"-क्रान्ति का यह विचार मार्क्स के मुंह से अजीब लगता है और हो सकता है कि रूस के प्लेख़ानोवपंथी और मेन्शेविक, स्त्रूवे के वे चेले जो अपने को मार्क्सवादी मनवाना चाहते हैं, कह दें कि यह शब्द मार्क्स की "क़लम से ग़लती से निकल गया"। इन लोगों ने मार्क्सवाद को ऐसी ज़लील उदारतावादी विकृति की स्थिति में पहुंचा दिया है कि उनकी दृष्टि में पूंजीवादी क्रान्ति और सर्वहारा क्रांति के बीच के प्रतिवाद के अलावा और किसी चीज़ का अस्तित्व ही नहीं है — और इस प्रतिवाद की भी व्याख्या वे बिलकुल निर्जीव ढंग से करते हैं।

अगर, उदाहरण के लिए हम बीसवीं शताब्दी की क्रान्तियों को लें, तो निस्सन्देह हमें मानना पड़ेगा कि पुर्तगाली और तुर्की दोनों क्रान्तियां पूंजीवादी क्रांतियां हैं। लेकिन "जन"-क्रान्ति उनमें से कोई भी नहीं है, क्योंकि उनमें से किसी में भी आम जनता, जनता का विशाल बहुमत, ख़ुद अपनी आर्थिक और राजनैतिक मांगों को लेकर क्रियात्मक ढंग से,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वतंत्र रूप से, किसी भी उल्लेखनीय मात्रा में हिस्सा नहीं लेता। इसके विपरीत रूस की १६०५–१६०७ की पूंजीवादी क्रांति ने यद्यपि इस तरह की "शानदार" सफलताएं नहीं पेश की थीं, जैसी कि पुर्तगाल और तुर्की की क्रांतियों को कभी-कभी हासिल हुईं, फिर भी वह निस्सन्देह "वास्तविक जन"-क्रांति थी, क्योंकि शोषण और उत्पीड़न से कुचला हुआ जन-समूह, जनता का बहुमत, समाज के सबसे निचले वर्ग स्वतंत्र रूप से उठ खड़े हुए थे और क्रांति की पूरी गति के ऊपर अपनी मांगों की, नष्ट किये जानेवाले पुराने समाज के स्थान पर नये समाज का अपने तरीक़े से निर्माण करने के अपने प्रयत्नों की छाप लगा दी थी।

१८७१ में यूरोपीय महाद्वीप का एक भी देश ऐसा नहीं था जिसकी जनसंख्या में सर्वहारा वर्ग का बहुमत रहा हो। "जन"-क्रान्ति, जो अपने प्रवाह में सचमुच जनता के बहुमत को खींच लाये, ऐसी तभी हो सकती थी जब वह अपनी धाराओं में सर्वहारा वर्ग और किसानों दोनों को खींच लेती। उस समय ये दोनों वर्ग ही "जनता" थे। ये दोनों वर्ग एकताबद्ध हैं क्योंकि "राज्य की नौकरशाही-फ़ौजी मशीनरी" उनका उत्पीड़न करती है, दमन करती है और शोषण करती है। इस मशीनरी को ध्वंस कर देना, उसे तोड़ देना – यही "जनता" के, जनता के बहुमत के, मज़दूरों और अधिकांश किसानों के हित में है; सबसे ग़रीब किसानों और सर्वहारा वर्ग के स्वतंत्र सायुज्य की "प्रारंभिक शर्त" है, इस तरह के सायुज्य के बिना जनवाद अस्थिर है और समाजवादी परिवर्त्तन असंभव है।

जैसा कि मालूम है, पेरिस कम्यून इसी तरह के सायुज्य की राह पर बढ़ रहा था, यद्यपि बहुत-से अन्दरूनी और बाहरी कारणों से वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच सका।

अतः, "वास्तविक जन-क्रांति" की बात करते समय मार्क्स ने, निम्नपूंजीवादी-वर्ग की लाक्षणिक विशेषताओं को ज़रा भी भूले बिना (उनके बारे में उन्होंने बहुतेरी और अक्सर चर्चा की थी), १८७१ के यूरोपीय महाद्वीप के अधिकांश देशों के वास्तविक वर्गीय शक्ति-संतुलन का ठीक ठीक हिसाब लगाया था। दूसरी तरफ़, उन्होंने इस बात की तसदीक़ की थी कि राज्य की मशीनरी को "ध्वंस करना" मज़दूरों और किसानों दोनों के हित में जरूर है, कि वह उनको एकताबद्ध करता है, कि वह उनके सामने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"परोपजीवी" को हटाने और उसकी जगह किसी नयी चीज़ की स्थापना करने का साझा कार्यभार प्रस्तुत करता है।

ठीक कौनसी चीज़ की स्थापना करने का?

२. राज्य की ध्वस्त मशीनरी का स्थान कौनसी चीज़ ले?

१८४७ में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के अन्दर इस प्रश्न का मार्क्स ने जो उत्तर दिया था, वह अभी एकदम अमूर्त था, वल्कि यह कहना अधिक सटीक होगा कि वह उत्तर ऐसा था जिसने कार्यभार तो वता दिये, पर उनको पूरा करने के उपाय नहीं बताये। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में जो उत्तर दिया गया था, वह यह था कि "शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग", "जनवाद की प्राप्ति" उस मशीनरी का स्थान लेगी।

मार्क्स काल्पनिक दुनिया में नहीं रमते थे, वह उम्मीद करते थे कि जन-आन्दोलन का अनुभव इस प्रश्न का उत्तर देगा कि शासक वर्ग के रूप में सर्वहारा वर्ग का यह संगठन कौनसे निश्चित रूप अख़्तियार करेगा और सवसे पूर्ण, सवसे सुसंगत रीति से "जनवाद की प्राप्ति" के काम के साथ इस संगठन को ठीक किस प्रकार मिलाया जायेगा।

मार्क्स ने कम्यून के अनुभव का, गोकि वह वहुत थोड़ा था, अपनी पुस्तक 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' में अत्यधिक सावधानी से विश्लेषण किया। इस पुस्तक के सबसे महत्त्वपूर्ण अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं:

> मध्य युग में पैदा होकर "स्थायी फ़ौज, पुलिस, नौकरशाही, पादरी-समुदाय और न्याय-कर्मचारियों समेत केन्द्रीभूत राज्यसत्ता" उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हो गयी। ज्यों-ज्यों पूंजी और श्रम के वर्ग-विरोध बढ़े, त्यों-त्यों "राज्यसत्ता श्रम के उत्पीड़न के लिए सामाजिक सत्ता का, वर्गीय प्रभुत्व की मशीनरी का चरित्र अधिकाधिक ग्रहण करती गयी। हर क्रांति के वाद, जो वर्ग-संघर्ष की नई प्रगति का द्योतक होती है, राज्यसत्ता का शुद्ध दमनकारी चरित्र अधिकाधिक उभरता आता है।" १८४८–१८४९ की क्रान्ति के वाद राज्यसत्ता "श्रम के ख़िलाफ़ पूंजी के युद्ध का राष्ट्रीय हथियार वन गयी। द्वितीय साम्राज्य ने उसको और भी दृढ़ वनाया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"साम्राज्य का बिलकुल विरोधी स्वरूप कम्यून था"। "वह उस जनतंत्र का निश्चित स्वरूप था जो न केवल वर्ग-प्रभुत्व के राजतांत्रिक रूप का, बल्कि स्वयं वर्ग-प्रभुत्व का ख़ात्मा कर देनेवाला था..."

सर्वहारा, समाजवादी जनतंत्र का यह "निश्चित" स्वरूप क्या था? उसने किस प्रकार के राज्य की सर्जना शुरू की?

"...कम्यून की सबसे पहली आज्ञप्ति यह थी कि स्थायी फ़ौज को ख़त्म कर दिया जाये और उसके स्थान में जनता को हथियारबंद किया जाये..."

अब यह मांग अपने को समाजवादी कहनेवाली प्रत्येक पार्टी के कार्यक्रम में रहती है। लेकिन उनके कार्यक्रमों का वास्तव में क्या मूल्य है, यह हमारे समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की हरकतों से स्पष्ट हो जाता है, जिन्होंने २७ फ़रवरी की क्रान्ति के ठीक बाद इस मांग को पूरा करने से सचमुच इनकार कर दिया था!

"...कम्यून सार्विक मताधिकार के आधार पर पेरिस के विभिन्न क्षेत्रों से चुनकर आये हुए ऐसे नगरपालिका-सदस्यों से बना था, जो मतदाताओं के प्रति ज़िम्मेदार थे और जो अपने पद से किसी समय हटाये जा सकते थे। स्वाभाविक रूप से ही उसके सदस्यों में से अधिकांश संख्या मज़दूरों या मज़दूर-वर्ग के माने हुए प्रतिनिधियों की थी...

"...उस समय तक केन्द्रीय सरकार का अभिकर्ता रहती आई पुलिस को उसके राजनैतिक दायित्वों से वंचित करके उसे कम्यून का ज़िम्मेदार और किसी भी वक़्त हटाया जा सकनेवाला निकाय बना दिया गया था...यही चीज़ प्रशासन के दूसरे विभागों के पदाधिकारियों के सम्बन्ध में भी कर दी गयी थी... कम्यून के सदस्यों से लेकर ऊपर से नीचे तक हर आदमी को मज़दूरों की मज़दूरी के बराबर तनख़ा पर सार्वजनिक सेवा करना पड़ता था। राज्य के ऊंचे पदों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर काम करनेवाले लोगों के निहित स्वार्थ और प्रतिनिधित्व के भत्ते का लोप उन पदाधिकारियों के लोप के साथ ही हो गया... पुरानी सरकार की भौतिक सत्ता के उपकरण – स्थायी फ़ौज और पुलिस का अन्त कर देने के बाद, कम्यून ने फ़ौरन दमन के आध्यात्मिक उपकरण – पादरियों की ताक़त, को ख़त्म करने के लिए क़दम उठाया... न्याय-कर्मचारियों की दिखावटी स्वतंत्रता का अन्त कर दिया गया... आगे से उनकी नियुक्ति चुनाव द्वारा करने और उन्हें ज़िम्मेदार तथा किसी भी समय अपने पद से हटाये जा सकने लायक़ बनाने की व्यवस्था कर दी गई थी..."[17]

इस प्रकार, राज्य की ध्वस्त मशीनरी के स्थान पर कम्यून ने मानो "केवल" अधिक पूर्ण जनवाद की स्थापना कर दी थी: स्थायी फ़ौज का अन्त, तमाम अधिकारियों की पूर्ण निर्वाचनीयता और पदच्युति। लेकिन वास्तव में यह "केवल" कुछ संस्थाओं के स्थान पर बहुत ही बुनियादी तौर से भिन्न प्रकार की संस्थाओं की वृहत ढंग से स्थापना का द्योतक है। यह "मात्रा के गुण में रूपान्तरण" का ही उदाहरण है: आम तौर से जिस हद तक कल्पना की जा सकती है उस हद तक पूरा और सुसंगत ढंग से लागू किया गया जनवाद, पूंजीवादी जनवाद से सर्वहारा जनवाद में बदल जाता है, वह राज्य (=एक निश्चित वर्ग को दबाने के लिए विशेष शक्ति) से एक ऐसी चीज़ में बदल जाता है जो वास्तव में राज्य नहीं रह जाती।

पूंजीपति-वर्ग को दबाना और उसके प्रतिरोध को कुचलना अब भी ज़रूरी है। कम्यून के लिए तो यह ख़ास तौर से ज़रूरी था, और उसकी हार का एक कारण यह भी था कि इस कार्य को उसने काफ़ी दृढ़ता के साथ नहीं किया था। लेकिन यहां दमन का निकाय अब जनता की बहुसंख्या है, अल्पसंख्या नहीं, जैसा गुलामी, भूदासता और उजरती गुलामी के अन्तर्गत सदा होता था। फिर चूंकि अपने उत्पीड़कों को जनता की बहुसंख्या स्वयं दबाती है, इसलिए दमन की "विशेष शक्ति" की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती! इस अर्थ में राज्य धीरे-धीरे विलुप्त होने लगता है। विशेषाधिकार-प्राप्त अल्पसंख्या (विशेषाधिकार-प्राप्त नौकरशाही, स्थायी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फ़ौज के सेनानायकों) की विशेष संस्थाओं के बजाय, ये सब काम बहुसंख्या स्वयं सीधे कर सकती है और राज्यसत्ता के कामों की ज़िम्मेदारी ज्यों-ज्यों आम जनता के कंधों पर पड़ती जाती है, त्यों-त्यों इस सत्ता के अस्तित्व की ज़रूरत कम होती जाती है।

इस सम्बन्ध में कम्यून द्वारा उठाये गये निम्नलिखित क़दम ख़ास तौर से उल्लेखनीय हैं, जिनपर मार्क्स ने ज़ोर दिया था: प्रतिनिधित्व के तमाम भत्तों और अफ़सरों के रुपये-पैसे सम्बंधी तमाम विशेषाधिकारों का अन्त, **"मज़दूरों की मज़दूरी"** की सतह तक राज्य के सभी नौकरों की तनख़ा का घटाव। पूंजीवादी जनवाद से सर्वहारा जनवाद में, उत्पीड़कों के जनवाद से उत्पीड़ित वर्गों के जनवाद में, एक निश्चित वर्ग को दबाने की **"विशेष शक्ति"** के रूप में राज्य से उत्पीड़कों को दबाने के लिए जनता की बहुसंख्या की, मज़दूरों और किसानों की, **आम शक्ति** में **परिवर्तन** को जितनी स्पष्टता के साथ यह चीज़ ज़ाहिर करती है उतनी और कोई चीज़ नहीं करती। और मार्क्स की शिक्षाओं की इस सबसे ज्वलन्त, कहें कि राज्य-सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण मद को अधिकतम पूर्ण रूप से भुला दिया गया है! प्रचलित टीकाओं में, जिनकी संख्या अनगिनत है, इसका ज़िक्र तक नहीं है। उसके सम्बंध में चुप रहना "रिवाजी" बात है, जैसे कि वह कोई पुराने फ़ैशन का "भोलापन" हो, उसी प्रकार जिस प्रकार ईसाइयत के राज्य-धर्म का दर्जा प्राप्त कर लेने पर ईसाई लोग जनवादी-क्रान्तिकारी भावनावाले आदिम ईसाई धर्म के "भोलेपन" को "भूल" गये थे।

राज्य के ऊंचे से ऊंचे अफ़सरों के वेतन को कम कर देने की मांग "केवल" भोले-भाले, आदिम जनवाद की मांग लगती है। आधुनिक अवसरवाद के एक "संस्थापक", भूतपूर्व सामाजिक-जनवादी एडुअर्ड बर्न्सटीन, "आदिम" जनवाद के सम्बन्ध में पूंजीपतियों के छिछले मज़ाक़ों को दोहराने की कलाबाज़ी एक से अधिक बार कर चुके हैं। तमाम अवसरवादियों और वर्त्तमान काउत्स्कीपंथियों की तरह वह भी इस चीज़ को समझने में पूर्ण रूप से असफल रहे कि एक तो किसी न किसी मात्रा में "आदिम" जनवाद की तरफ़ "वापसी" बग़ैर पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण **असंभव** है (क्योंकि और किस तरह जनता की बहुसंख्या और फिर बिना किसी अपवाद के पूरी जनता द्वारा राजकाज सम्पादन की ओर बढ़ा जा सकता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है ?), दूसरे, पूंजीवाद और पूंजीवादी संस्कृति पर आधारित "आदिम जनवाद" और आदिम काल का या पूंजीवाद से पहले का आदिम जनवाद एक ही चीज़ नहीं हैं। पूंजीवादी संस्कृति ने बड़े पैमाने के उत्पादन, फ़ैक्टरियों, रेलवे, डाक, टेलीफ़ोनों आदि की सृष्टि कर दी है, और इस आधार पर पुरानी "राज्यसत्ता" के अधिकांश काम इतने सरल हो गये हैं और उन्हें इन्दराज, नम्बरशुमारी और जांच की इतनी सीधी-सादी कारगुज़ारियों में उतारा जा सकता है कि उन्हें हर साक्षर आदमी काफ़ी आसानी से कर सकता है, साधारण "मज़दूरों की मज़दूरी" पर काफ़ी आसानी से किया जा सकता है और उनसे संबंधित तमाम विशेषाधिकारों का, तमाम "अफ़सरी शान-शौक़त" का, अन्त किया जा सकता है (और किया जाना चाहिए)।

विना किसी अपवाद के सभी अधिकारियों की निर्वाचनीयता, किसी भी समय पदच्युति, "मज़दूरों की मज़दूरी" की सतह पर उनकी तनख़ाओं का घटाव – ये सरल और "स्वतोस्पष्ट" जनवादी कार्रवाइयां मज़दूरों और अधिकांश किसानों के हितों में पूर्ण एकता उत्पन्न करने के साथ ही पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के लिए पुल का भी काम करती हैं। ये कार्रवाइयां राज्य के पुनर्निर्माण से, समाज के शुद्ध राजनैतिक पुनर्निर्माण से संबंधित हैं, लेकिन अपनी पूरी सार्थकता और अहमियत, वेशक, महज़ "अपहरकर्त्ताओं के सम्पत्तिहरण" की तामील या तैयारी के सिलसिले में ही, अर्थात् उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों के निजी स्वामित्व को समाज के स्वामित्व में वदलने के साथ ही, प्राप्त करती हैं।

> मार्क्स ने लिखा था कि "ख़र्चे की दो सबसे वड़ी मदों – स्थायी फ़ौज और नौकरशाही – को मिटाकर कम्यून ने सभी पूंजीवादी क्रान्तियों के इस आकर्षक नारे को कि शासन सस्ता हो, वास्तविकता का रूप दे दिया।"

निम्नपूंजीपति-वर्ग के दूसरे हिस्सों के लोगों की तरह किसानों के अन्दर से भी कुछ इने-गिने लोग ही "चोटी तक पहुंच पाते हैं", पूंजीवादी अर्थ में "दुनिया में तरक़्क़ी कर पाते हैं", यानी सम्पन्न व्यक्ति, पूंजीपति या सुरक्षित और विशेषाधिकारी पदासीन अफ़सर वन पाते हैं। हर उस

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूंजीवादी देश में, जहां किसान समुदाय है भी (और अधिकांश पूंजीवादी देश ऐसे ही हैं), उसका बहुत बड़ा बहुमत सरकार द्वारा उत्पीड़ित है और उसका तख़्ता उलट देने के लिए लालायित है, "सस्ते" शासन के लिए लालायित है। इस काम की तामील केवल सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है और उसकी तामील करने के साथ ही वह राज्य के समाजवादी पुनर्निर्माण की तरफ़ भी क़दम बढ़ाता है।

३. संसदीय व्यवस्था का उन्मूलन

मार्क्स ने लिखा था: "कम्यून को संसदीय नहीं, बल्कि ऐसी कामकाजी संस्था बनना था जो क़ानून बनानेवाली भी हो और कार्यकारी भी...

"...तीन या छः वर्ष में एक बार यह तै कर देने के बजाय कि शासक वर्ग का कौन सदस्य संसद में जाकर जनता का प्रतिनिधित्व और दमन (ver-und zertreten) करे, सार्विक मताधिकार कम्यूनों में संगठित जनता की सेवा उसी तरह करनेवाला था जिस तरह अपने कारोबार के लिए मज़दूरों, फ़ोरमैनों या मुनीमों की तलाश करनेवाले हर रोज़गारदाता की सेवा वैयक्तिक मताधिकार करता है।"

सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद और अवसरवाद के बोलबाला की बदौलत १८७१ में की गई संसदीय व्यवस्था की यह उल्लेखनीय आलोचना भी आज मार्क्सवाद के "विस्मृत शब्दों" में शामिल है। पेशेवर मंत्रियों और संसदबाज़ों ने, सर्वहारा वर्ग के ग़द्दारों और आज के "कारोबारी" समाजवादियों ने, संसदीय व्यवस्था की आलोचना का सारा कार्य अराजकतावादियों के लिए छोड़ दिया है, और इस अद्भुत बुद्धिमत्तापूर्ण तर्क के आधार पर वे संसदीय व्यवस्था की हर प्रकार की आलोचना को "अराजकतावाद" कहकर उसकी निन्दा करते हैं!! कोई आश्चर्य नहीं कि शीदेमान, डेविड, लेजियन, सेम्बात, रेनोदिल, हेंडेरसन, वैंडरवेल्डे, स्टानिंग, ब्रांटिंग, बिसोलाती जैसे "समाजवादियों" से क्षुब्ध होकर उन्नत संसदीय व्यवस्थावाले देशों का सर्वहारा वर्ग अराजकतावादी-संघाधिपत्यवाद

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के प्रति अधिकाधिक सहानुभूति दिखलाने लगा है, यद्यपि वह अवसरवाद का सगा भाई ही है।

लेकिन मार्क्स के लिए क्रान्तिकारी द्वन्द्ववाद कभी खोखला फ़ैशनेबुल वागाडम्वर, झुनझुना नहीं था, जैसा कि प्लेख़ानोव, काउत्स्की तथा दूसरों ने उसे बना दिया है। मार्क्स जानते थे कि पूंजीवादी संसदीय व्यवस्था के "सुअरबाड़े" तक के इस्तेमाल की, ख़ास तौर से जब परिस्थिति प्रत्यक्ष ही क्रान्तिकारी न हो, अयोग्यता के कारण अराजकतावाद के साथ किस तरह निर्ममता से संबंध-विच्छेद कर लेना चाहिए। लेकिन साथ ही वह यह भी जानते थे कि संसदीय व्यवस्था की सच्ची क्रान्तिकारी सर्वहारा आलोचना किस तरह की जाती है।

केवल संसदीय-संविधानिक राजतंत्रों में ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक जनवादी जनतंत्रों में भी कुछ वर्षों पर एक बार यह फ़ैसला करना ही पूंजीवादी संसदीय व्यवस्था का सच्चा सार है कि शासक वर्ग का कौन सदस्य संसद में जाकर जनता का दमन और उत्पीड़न करेगा।

लेकिन अगर हमें राज्य के प्रश्न को लेना है, अगर इस क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों की दृष्टि से संसदीय व्यवस्था पर राज्य की एक संस्था के रूप में विचार करना है, तो संसदीय व्यवस्था से निस्तार का रास्ता क्या है? किस तरह उसके बिना काम चलाया जा सकता है?

हमें बार-बार दोहराना चाहिए: कम्यून के अध्ययन पर आधारित मार्क्स की सीखों को इतनी पूरी तरह भुला दिया गया है कि संसदीय व्यवस्था की अराजकतावादी या प्रतिक्रियावादी आलोचना को छोड़कर और कोई भी आलोचना आज के "सामाजिक-जनवादी" (पढ़िये: समाजवाद के आधुनिक ग़द्दार) की समझ में बिलकुल नहीं आती।

संसदीय व्यवस्था से निस्तार का रास्ता बेशक प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं और चुनाव के सिद्धान्त को ख़त्म कर देना नहीं, बल्कि प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं को गपबाज़ी के अड्डों से बदलकर "कामकाजी" संस्थाएं बना देना है। "कम्यून को संसदीय नहीं, बल्कि ऐसी कामकाजी संस्था बनना था, जो क़ानून बनानेवाली भी हो और कार्यकारी भी।"

"संसदीय नहीं, कामकाजी संस्था"—आज के संसदबाज़ों और सामाजिक-जनवाद के संसदीय "पालतू कुत्तों" के मुंह पर यह भरपूर तमाचा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है! अमरीका से स्विट्ज़रलैंड तक, फ़्रांस से इंगलैंड, नार्वे आदि तक चाहे किसी संसदीय देश को ले लीजिये—इन देशों में "राज्य" के असली काम की तामील पर्दे की ओट में की जाती है और उसे महकमे, दफ़्तर और फ़ौजी सदर-मुक़ाम करते हैं। संसद को "आम जनता" को बेवक़ूफ़ बनाने के विशेष उद्देश्य से बकवास करने के लिए छोड़ दिया जाता है। यह बात इतनी सच्ची है कि रूसी जनतंत्र तक में, जो एक पूंजीवादी-जनवादी जनतंत्र है, संसदीय व्यवस्था की ये सारी बुराइयां असली संसद के बनने से पहले ही, फ़ौरन जाहिर हो गयीं। सड़ी हुई कूपमंडूकता के स्कोबेलेव और त्सेरेतेली, चेर्नोव और अव्क्सेन्त्येव आदि जैसे सूरमा सोवियतों तक को अत्यंत घृणित पूंजीवादी संसदीयता से गन्दा करने में सफल हो गये हैं, उन्हें महज़ गपबाज़ी के अड्डों में बदल दिया गया है। सोवियतों के अन्दर "समाजवादी" मन्त्रिगण गांवों के भोले-भाले लोगों को लफ़्फ़ाज़ी और प्रस्तावों से ठग रहे हैं। सरकार के अन्दर निरन्तर जोड़-तोड़ चल रही है जिससे कि एक ओर तो अधिक से अधिक समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों को बारी बारी से इज्ज़त और आमदनी की नौकरियां दी जायें और दूसरी ओर "जनता का ध्यान" भी बंटा रहे और तब तक "राज्य" का असली "काम" सरकारी दफ़्तर और फ़ौजी सदर-मुक़ाम "चलाते" हैं!

सत्तारूढ़ "समाजवादी-क्रांतिकारी" पार्टी के मुखपत्र 'देलो नरोदा'[18] ने अभी हाल में अपने एक सम्पदकीय लेख में ऐसे "भले समाज" के लोगों के लिए उपयुक्त अप्रतिम स्पष्टता के साथ, जिसके अन्दर "सभी" राजनैतिक भ्रष्टाचार में जुटे हुए हैं, यह स्वीकार किया था कि उन मंत्रालयों के अन्दर भी, जिनके अध्यक्ष "समाजवादी" (ख़ुदा बचाये!) हैं, सारी नौकरशाही मशीनरी वास्तव में पहले ही जैसी बनी हुई है, पुराने ही ढर्रे पर चल रही है और क्रान्तिकारी कार्रवाइयों का "स्वतंत्रतापूर्वक" तोड़-फोड़ कर रही है! इस स्वीकारोक्ति के बिना भी क्या सरकार में समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की शिरकत का तथ्यगत इतिहास ही यह साबित नहीं कर देता? इसमें एकमात्र उल्लेखनीय बात यह है कि कैडेट मंत्रियों की संगत में चेर्नोव, रुसानोव, ज़ेन्ज़ीनोव और 'देलो नरोदा' के दूसरे सम्पादकों ने शर्म-लिहाज़ की तमाम भावना को इस तरह बेच खाया है कि खुले-आम इस बात का ऐलान करने में उन्हें किसी प्रकार की

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

झिझक नहीं होती कि "उनके" मंत्रालयों में सब कुछ पुराने ही ढर्रे पर चल रहा है, जैसे कि यह कोई छोटी सी बात हो!! गांव के सीधे-सादे लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिए क्रान्तिकारी-जनवादी शब्दावली और पूंजीपतियों का "दिल ख़ुश करने" के लिए नौकरशाही और लालफ़ीताशाही— "ईमानदार" संयुक्त मंत्रिमंडल का यही सारतत्त्व है।

पूंजीवादी समाज की ज़रख़रीद तथा गलित संसदीय व्यवस्था की जगह कम्यून ऐसी संस्थाएं क़ायम करता है, जिनके अन्दर राय देने और बहस करने की स्वतंत्रता पतित होकर प्रवंचना नहीं बनती, क्योंकि संसद-सदस्यों को ख़ुद काम करना पड़ता है, अपने बनाये हुए क़ानूनों को ख़ुद ही लागू करना पड़ता है, उनके परिणामों की जीवन की कसौटी पर स्वयं परीक्षा करनी पड़ती है और अपने चुनाव-क्षेत्र के मतदाताओं के प्रति उन्हें प्रत्यक्ष रूप से ज़िम्मेदार होना पड़ता है। प्रतिनिधिमूलक संस्थाएं बरक़रार रहती हैं, लेकिन विशेष व्यवस्था के रूप में, क़ानून बनाने और क़ानून लागू करने के कामों के बीच विभाजन के रूप में, सदस्यों की विशेषाधिकारी स्थिति के रूप में संसदीय व्यवस्था नहीं होती। प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं के बिना जनवाद की, सर्वहारा जनवाद की भी, कल्पना हम नहीं कर सकते, लेकिन संसदीय व्यवस्था के बिना जनवाद की कल्पना हम कर सकते हैं और हमें करनी चाहिए, अगर पूंजीवादी समाज की आलोचना हमारे लिए कोरा शब्दजाल नहीं है, अगर पूंजीपति-वर्ग के शासन को उलटने की हमारी इच्छा वास्तविक और सच्ची है और मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की तरह, शीदेमान, लेजियन, सेम्बात और वैंडरवेल्डे जैसे लोगों की तरह मज़दूरों के वोट पकड़ने के लिए "चुनाव" का नारा भर नहीं है।

यह बात बहुत शिक्षाप्रद है कि मार्क्स जब उन पदाधिकारियों के कामों के बारे में बात करते हैं, जो कम्यून और सर्वहारा जनवाद के लिए ज़रूरी हैं, तो उनकी तुलना "हर अन्य रोज़गारदाता" के कर्मचारियों के साथ, यानी "मज़दूरों, फ़ोरमैनों और मुनीमों समेत" साधारण पूंजीवादी उद्योग के साथ करते हैं।

मार्क्स को कल्पनावाद छू तक नहीं गया है कि उन्होंने किसी "नये" समाज की मनगढ़न्त या कपोल-कल्पना की हो। नहीं, उन्होंने पुराने समाज से नये समाज के जन्म का, पहले से दूसरे में संक्रमण के रूपों का प्राकृतिक-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐतिहासिक क्रम के रूप में अध्ययन किया। उन्होंने सर्वहारा वर्ग के जन-आन्दोलन के असली तजुर्बे की जांच-पड़ताल की, और उससे व्यावहारिक सबक़ निकालने की कोशिश की। उन्होंने कम्यून से "सीखा", उसी तरह जिस तरह दुनिया के तमाम महान् क्रान्तिकारी विचारकों ने उत्पीड़ित वर्गों के महान् आन्दोलन से निस्संकोच सीखा और कभी उन्हें पण्डिताऊ "उपदेश" नहीं दिये (जैसे प्लेख़ानोव का यह उपदेश कि "हथियार नहीं उठाना चाहिए था", या त्सेरेतेली का उपदेश कि "प्रत्येक वर्ग को अपनी सीमाओं के भीतर ही रहना चाहिए")।

नौकरशाही को सब जगह और पूर्ण रूप से फ़ौरन ख़त्म कर देने का तो कोई सवाल ही नहीं हो सकता। वह हवाई बात है। लेकिन पुरानी नौकरशाही मशीनरी को फ़ौरन ध्वंस करके तुरंत ही ऐसी नयी मशीनरी के निर्माण में लग जाना, जो धीरे-धीरे तमाम नौकरशाही का अन्त करने में मदद दे—यह हवाई बात नहीं है, यह कम्यून का अनुभव है, यह क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का सीधा और तात्कालिक कार्यभार है।

पूंजीवाद "राज्य" के प्रशासन के कामों को सरल बना देता है, वह इस बात को संभव कर देता है कि "हुक्म चलाने" के तमाम तरीक़ों को ख़त्म कर दिया जाये और सारे काम को सर्वहारा वर्ग के (शासक वर्ग के रूप में) ऐसे संगठन-कार्य तक सीमित कर दिया जाये, जो "मज़दूरों, फ़ोरमैनों और मुनीमों" को पूरे समाज की तरफ़ से मज़दूरी पर रखे।

हम कल्पनावादी नहीं हैं। हम तमाम प्रशासन को, तमाम मातहती को फ़ौरन ख़त्म कर देने के "सपने" नहीं देखते। सर्वहारा अधिनायकत्व के कार्यभार के बारे में समझ की कमी पर आधारित ये अराजकतावादी सपने मार्क्सवाद के साथ ज़रा भी मेल नहीं खाते और वास्तव में, समाजवादी क्रान्ति को तब तक के लिए टालने का काम करते हैं, जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदल जाता। नहीं, हम ऐसे लोगों के साथ ही समाजवादी क्रान्ति चाहते हैं, जैसे वे इस समय हैं, जो मातहती, नियंत्रण और "फ़ोरमैनों और मुनीमों" के बिना काम नहीं चला सकते।

लेकिन मातहती होनी चाहिए तमाम शोषितों, तमाम मेहनतकशों के सबसे आगे बढ़े हुए हथियारबन्द दस्ते की, यानी सर्वहारा वर्ग की मातहती। राज्याधिकारियों की ख़ास "हुक्मरानी" की जगह "फ़ोरमैनों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रौर मुनीमों" की सीधी-सादी कारगुज़ारी, ऐसी कारगुज़ारी, जिसे ग्रब प्रत्येक शहरी पूरी तरह चला सकता है ग्रौर जिसे "मज़दूरों की मज़दूरी" बरावर वेतन पर ग्रच्छी तरह चलाया जा सकता है—फ़ौरन, कल नहीं ग्राज ही, शुरू की जा सकती है ग्रौर की जानी चाहिए।

पूंजीवाद ने जो कुछ पहले ही बना दिया है उसके ग्राधार पर, ग्रौर मजदूरों की हैसियत से ग्रपने ग्रनुभव पर भरोसा करते हुए, हथियारबन्द मज़दूरों की राज्यसत्ता द्वारा समर्थित सख़्त, फ़ौलादी ग्रनुशासन क़ायम करते हुए हम मज़दूर ख़ुद बड़े पैमाने के उत्पादन का संगठन करेंगे, राज्य के ग्रधिकारियों की भूमिका घटाकर सिर्फ़ इतनी कर देंगे कि वे उत्तरदायी, पदच्युत ग्रौर सामान्य वेतन पानेवाले "फ़ोरमैनों ग्रौर मुनीमों" की तरह हमारी ग्राज्ञाग्रों का (निस्सन्देह हर प्रकार, रूप ग्रौर दर्जे के तकनीक-विशेषज्ञों की मदद से) पालन करें। यही है हमारा सर्वहारा कार्यभार, सर्वहारा क्रान्ति को पूरा करने की शुरूग्रात हम इसी से कर सकते हैं ग्रौर हमें करनी चाहिए। बड़े पैमाने के उत्पादन के ग्राधार पर इस तरह की शुरूग्रात स्वयं ही सम्पूर्ण नौकरशाही के क्रमश: "विलोप" ग्रौर ऐसी नयी व्यवस्था की सृष्टि की ग्रोर ले जायेगी—ग्रसली व्यवस्था, उजरती गुलामी से भिन्न व्यवस्था,—ऐसी व्यवस्था, जिसके ग्रन्दर नियंत्रण ग्रौर हिसाब-किताब रखने के सरल से सरलतर होते जानेवाले कामों को हर कोई बारी बारी से करेगा, फिर वे ग्रादत बन जायेंगे ग्रौर ग्रन्त में, ग्राबादी के विशेष भाग के विशेष कामों के रूप में उनका ग्रंत हो जायेगा।

पिछली शताब्दी के ग्राठवें दशक के एक तीक्ष्ण-बुद्धि जर्मन सामाजिक-जनवादी ने डाक-व्यवस्था को समाजवादी ग्रर्थ-व्यवस्था का ग्रादर्श कहा था। यह बिलकुल सच है। ग्राज डाक-व्यवस्था राजकीय-पूंजीवादी एकाधिकार के नमूने पर संगठित कारोबार है। साम्राज्यवाद तमाम ट्रस्टों को धीरे-धीरे इसी तरह के संगठनों में बदलता जा रहा है, जिनमें काम के बोझ से लदे ग्रौर भूखे "ग्राम" मेहनतकशों के ऊपर वही पूंजीवादी नौकरशाही होती है। लेकिन उनमें सामाजिक ग्रर्थ-व्यवस्था का यंत्र तैयार रखा है। हम पूंजीपतियों का तख़्ता उलट दें, इन शोषकों के विरोध को हथियारबन्द मज़दूरों के फ़ौलादी हाथों से कुचल दें, ग्राधुनिक राज्य की नौकरशाही मशीनरी का ध्वंस कर दें,—ग्रौर हमें उच्च तकनीकी साज-सज्जा से लैस

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यंत्र मिल जायेगा, जो "परजीवी" से मुक्त होगा, जिसको संगठित मज़दूर स्वयं इस्तेमाल कर सकेंगे, तकनीकी विशेषज्ञों, फ़ोरमैनों तथा मुनीमों को मज़दूरी पर रखेंगे और उन सबको, आम तौर पर "राज्य के" तमाम पदाधिकारियों की तरह, साधारण मज़दूरों की मज़दूरी बराबर वेतन देंगे। यह एक ठोस और व्यावहारिक कार्यभार है जिसे तमाम ट्रस्टों के सम्बन्ध में तुरन्त ही पूरा किया जा सकता है। यह ऐसा कार्यभार है, जो श्रमजीवियों को शोषण से छुटकारा दिला देगा और उस अनुभव का ध्यान दिलायेगा जिसे कम्यून ने (ख़ास तौर से राज्य के निर्माण के क्षेत्र में) पहले ही अमल में लाना शुरू कर दिया था।

हमारा तात्कालिक उद्देश्य राष्ट्र की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को डाक-व्यवस्था के नमूने पर संगठित करना है, जिससे तकनीकी विशेषज्ञों, फ़ोरमैनों तथा मुनीमों को, सब अफ़सरों की तरह "मज़दूरों की मज़दूरी" से ज़्यादा तनख़ा न मिले और वे सभी सशस्त्र सर्वहारा वर्ग के नियंत्रण और नेतृत्व में रहें। हमें ऐसे ही आर्थिक आधार पर संगठित ऐसे ही राज्य की जरूरत है। संसदीय व्यवस्था के उन्मूलन और प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं को क़ायम रखने से यही होगा। यही मेहनतकश वर्गों को पूंजीपति-वर्ग द्वारा इन संस्थाओं के भ्रष्टीकरण से मुक्त करेगी।

४. राष्ट्रीय एकता का संगठन

"...राष्ट्रीय संगठन के एक छोटे ख़ाके में, जिसे विकसित करने का समय कम्यून को नहीं मिल पाया था, साफ़-साफ़ कहा गया है कि कम्यून...छोटे से छोटे पुरवे तक का राजनैतिक रूप होने-वाला था"... कम्यूनों को ही पेरिस में "राष्ट्रीय प्रतिनिधिमण्डल" को चुनना था।

"...केन्द्रीय सरकार के लिए जो थोड़े किन्तु महत्त्वपूर्ण काम तब भी बाक़ी रह जाते, उन्हें दबाना नहीं था—जैसा कि जान-बूझकर ग़लत बयानी की गई है,—बल्कि उन्हें कम्यूनी, यानी बेहद ज़िम्मेदार अधिकारियों के हवाले कर देना था...

"...राष्ट्र की एकता को तोड़ना नहीं था, बल्कि उल्टे,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम्यूनी संविधान द्वारा संगठित करना था; उसे उस राज्यसत्ता के उन्मूलन के माध्यम से वास्तविकता बनना था, जो उस एकता की प्रतिमूर्त्ति होने का दावा करती थी, लेकिन राष्ट्र से – जिसकी कि वह परजीवी मांस-वृद्धि मात्र थी – स्वतंत्र और श्रेष्ठतर होना चाहती थी। पुरानी सरकारी सत्ता के महज़ दमनकारी अंगों को काट देना था, साथ ही उसके सही कामों को उस सत्ता से, जो समाज के ऊपर होने का झूठा दावा करती थी, छीन लेना था और उस समाज के ज़िम्मेदार सेवकों को सौंप देना था।"

मार्क्स के इन कथनों को वर्त्तमान सामाजिक-जनवाद के अवसरवादियों ने किस हद तक नहीं समझा है – या शायद यह कहना ज्यादा सच होगा कि समझने से इनकार किया है – यह बात सबसे अच्छी तरह ग़द्दार बर्न्सटीन की हेरोस्ट्रेटसी[10] कुख्यातिवाली पुस्तक 'समाजवाद के आधार-सूत्र और सामाजिक-जनवाद के कार्यभार' से ज़ाहिर है। मार्क्स के ऊपर दिये गये ठीक इसी अंश के सम्बन्ध में बर्न्सटीन ने लिखा था कि यह कार्यक्रम "अपने राजनैतिक अन्तर्य के लेहाज से अपनी तमाम ख़ास विशेषताओं में प्रूदों के संघवाद से अधिकतम साम्य प्रदर्शित करता है... मार्क्स और 'निम्नपूंजीवादी' प्रूदों" (उसे व्यंग्यपूर्ण बनाने के लिए 'निम्नपूंजीवादी' शब्द को बर्न्सटीन ने उद्धरण-चिन्हों के अन्दर लिखा है) "के बीच मतभेद की और तमाम बातों के बावजूद, इन बातों पर उनके सोचने के ढंग अधिक से अधिक संभव समानता रखते हैं।" बर्न्सटीन आगे लिखते हैं कि निस्सन्देह, नगरपालिकाओं का महत्त्व बढ़ रहा है, लेकिन "यह चीज़ मुझे सन्देहजनक लगती है कि जनवाद का पहला काम आधुनिक राज्यों की ऐसी मंसूख़ी (Auflösung) और उनके संगठन की ऐसी पूरी उलट-पुलट (Umwandlung) होगा, जैसा मार्क्स और प्रूदों कल्पना करते हैं (राष्ट्रीय सभा का प्रान्तों या ज़िलों की उन सभाओं के प्रतिनिधियों द्वारा गठन, जो ख़ुद कम्यूनों के प्रतिनिधियों द्वारा गठित होंगी), जिससे राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की पूरी पुरानी प्रथा ही पूर्ण रूप से ग़ायब हो जायेगी।" (बर्न्सटीन, 'आधार-सूत्र', जर्मन संस्करण, १८९९, पृष्ठ १३४ और १३६।)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"राज्यसत्ता के—परजीवी मांस-वृद्धि के—उन्मूलन" के बारे में मार्क्स के विचारों को प्रूदों के संघवाद के साथ उलझाना निहायत बेहूदी बात है! लेकिन यह कोई आकस्मिक बात नहीं है, क्योंकि अवसरवादी को यह कभी नहीं सूझता कि मार्क्स यहां केन्द्रीयतावाद के विपरीत संघवाद की बात हरगिज़ नहीं करते, बल्कि वह राज्यसत्ता की पुरानी, पूंजीवादी मशीनरी को, जो तमाम पूंजीवादी देशों में मौजूद है, ध्वंस करने की बात कर रहे हैं।

अवसरवादी के दिमाग़ में केवल वही बात आती है जिसे वह अपने इर्द-गिर्द निम्नपूंजीवादी कूपमंडूकता और "सुधारवादी" गतिरोध के वातावरण में देखता है, यानी केवल "नगरपालिकाएं"! सर्वहारा क्रान्ति के बारे में अवसरवादी सोचना तक भूल गया है।

यह हास्यास्पद है। लेकिन उल्लेखनीय बात तो यह है कि इस संबंध में बर्न्संटीन का किसी ने प्रतिवाद नहीं किया। बर्न्संटीन की बातों का खण्डन बहुतों ने किया है, ख़ास तौर से रूसी साहित्य में प्लेख़ानोव ने और यूरोपीय साहित्य में काउत्स्की ने। लेकिन इस प्रश्न पर बर्न्संटीन ने मार्क्स की बातों को जिस तरह तोड़ा-मरोड़ा है, उसके बारे में उनमें से किसी ने कुछ भी नहीं कहा है।

क्रान्तिकारी ढंग से सोचना और क्रान्ति के बारे में विचार करना अवसरवादी इस हद तक भूल गया है कि "संघवाद" को वह मार्क्स के मत्थे मढ़ता है और उन्हें अराजकतावाद के संस्थापक, प्रूदों के साथ मिला देता है। और शुद्ध मार्क्सवादी होने तथा क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की शिक्षाओं की रक्षा करने को इच्छुक काउत्स्की और प्लेख़ानोव इस प्रश्न पर चुप हैं! मार्क्सवाद और अराजकतावाद के अन्दर से संबंधित विचारों के बारे में फैली हुई ज़बर्दस्त विचार-भ्रष्टता का, जो काउत्स्कीपंथियों और अवसर-वादियों की ख़ास विशेषता है, एक मूल कारण यह भी है। उसपर हम आगे विचार करेंगे।

कम्यून के अनुभव के संबंध में मार्क्स के कथनों में, जिन्हें अभी ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, संघवाद की छाया तक नहीं है। मार्क्स प्रूदों के साथ ठीक उसी प्रश्न पर सहमत थे, जिसे अवसरवादी बर्न्संटीन नहीं देखते। मार्क्स ठीक उसी प्रश्न पर प्रूदों से असहमत थे, जिस पर बर्न्संटीन सहमति देखते हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मार्क्स प्रूदों से इस बात में सहमत थे कि दोनों राज्य की वर्तमान मशीनरी का "ध्वंस करने" के पक्ष में थे। मार्क्सवाद और अराजकतावाद (प्रूदों और बकूनिन दोनों) के बीच इस समानता को न अवसरवादी देखना चाहते हैं और न काउत्स्कीपंथी, क्योंकि इस प्रश्न पर वे मार्क्सवाद से अलग हो गये हैं।

प्रूदों और बकूनिन दोनों के साथ ठीक संघवाद के ही प्रश्न पर मार्क्स का मतभेद था (सर्वहारा अधिनायकत्व की तो बात ही क्या)। अराजकतावाद के निम्नपूंजीवादी विचारों से ही उसूली तौर से संघवाद पैदा होता है। मार्क्स केन्द्रीयतावादी थे। अभी अभी उद्धृत किये गये उनके कथनों में केन्द्रीयतावाद से वह ज़रा भी इधर-उधर नहीं हुए हैं। जिनके दिमाग़ में राज्य के बारे में निम्नपूंजीवादी "अंधविश्वास" भरे हैं, केवल उन्हीं लोगों को पूंजीवादी राजकीय मशीनरी के ख़ात्मे में केन्द्रीयतावाद का ख़ात्मा नज़र आ सकता है!

लेकिन अगर सर्वहारा वर्ग और सबसे ग़रीब किसान राज्यसत्ता को हाथ में ले लें, अपने को पूर्णतः स्वतंत्र रूप से कम्यूनों में संगठित कर लें और पूंजी पर आक्रमण करने के लिए, पूंजीपतियों के प्रतिरोध को कुचलने के लिए और रेलों, कारख़ानों, ज़मीन आदि पर निजी स्वामित्व का अंत करके उन्हें **सम्पूर्ण** राष्ट्र के हाथों में, पूरे समाज के हाथों में सौंप देने के लिए, सभी कम्यूनों की कार्रवाइयों को **एकताबद्ध** करें, तो क्या वह केन्द्रीयतावाद नहीं होगा? क्या वह सबसे सुसंगत जनवादी केन्द्रीयतावाद न होगा? क्या वह सर्वहारा केन्द्रीयतावाद न होगा?

बर्न्सटीन स्वैच्छिक केन्द्रीयतावाद की संभावना की, कम्यूनों के स्वेच्छा से मिलकर एक राष्ट्र बन जाने की, पूंजीवादी शासन और पूंजीवादी राज्य की मशीनरी को नष्ट करने के लिए सर्वहारा कम्यूनों के स्वेच्छा से मिलकर एक हो जाने की कल्पना तक नहीं कर सकते। तमाम कूपमंडूकों की तरह बर्न्सटीन भी केन्द्रीयतावाद की कल्पना केवल एक ऊपर की, केवल नौकरशाही और फ़ौज के ज़ोर से लादी और क़ायम रखी जानेवाली चीज़ के रूप में ही कर सकते हैं।

मार्क्स ने मानो पहले से ही अपने विचारों के तोड़े-मरोड़े जाने की संभावना देखकर, इस बात पर जान-बूझकर ज़ोर दिया था कि यह अभियोग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि कम्यून ने राष्ट्र की एकता को नष्ट करना चाहा था, केन्द्रीय सत्ता को मिटा देना चाहा था, सोच-समझकर की गई जालसाजी थी। मार्क्स ने जान-बूझकर ये शब्द इस्तेमाल किये थे: "राष्ट्र की एकता को संगठित किया जाना था", ताकि चेतन, जनवादी, सर्वहारा केन्द्रीयतावाद को पूंजीवादी, फ़ौजी, नौकरशाही केन्द्रीयतावाद के मुक़ाबले में रखा जा सके।

लेकिन... उनसे ज्यादा बहरे और कोई नहीं होते जो सुनना नहीं चाहते। और आज के सामाजिक-जनवाद के अवसरवादी ठीक राज्यसत्ता को नष्ट कर देने की, परजीवी मांस-वृद्धि को काट देने की ही बात नहीं सुनना चाहते।

५. परजीवी – राज्य – का उन्मूलन

इस विषय पर मार्क्स के कथन हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं, अब उनकी अभिपूर्त्ति आवश्यक है।

> उन्होंने लिखा था: "...नयी ऐतिहासिक रचनाओं का आम तौर से यह भवितव्य होता है कि उन्हें सामाजिक जीवन के पुराने, यहां तक कि बेकार हो गये स्वरूपों का, जिनके साथ वे थोड़ी-बहुत भी मिलती-जुलती हों, प्रतिरूप समझ लिया जाता है। इस तरह इस नये कम्यून को, जो कि आधुनिक राज्यसत्ता को तोड़ता (bricht) है, मध्ययुग के कम्यूनों का पुनरुज्जीवन... छोटे-छोटे राज्यों का संघ (मांटेस्क्यू तथा जिरौंदवादी[20])... अतिकेन्द्रीयता के विरुद्ध प्राचीन संघर्ष का अतिरंजित रूप समझ लिया गया है...
>
> "...कम्यूनी व्यवस्था समाज को वे तमाम शक्तियां वापस सौंप देती, जिन्हें समाज को चूसनेवाली और उसकी स्वच्छन्द गति को अवरुद्ध करनेवाली परजीवी राज्यसत्ता अभी तक हड़पे हुई थी। इस एक ही काम के द्वारा वह फ़्रांस के पुनर्जीवन का आरंभ कर देती...
>
> "...कम्यूनी व्यवस्था गांवों के उत्पादकों को उनके ज़िलों के केन्द्रीय शहरों के बौद्धिक नेतृत्व में ले आती, और वहां शहरी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मज़दूरों के रूप में उन्हें उनके हितों के स्वाभाविक रक्षकों से मिला देती। ख़ुद कम्यून के अस्तित्व का मतलब स्वाभाविक तौर से स्थानीय स्वशासन होता, लेकिन अब फ़ालतू बन गयी राज्यसत्ता के प्रतितोल के रूप में नहीं।"

"राज्यसत्ता को", जो "परजीवी मांस-वृद्धि" थी, "नष्ट करना", उसे "काटकर अलग कर देना", उसे "ध्वंस करना"; "अब फ़ालतू बन गयी राज्यसत्ता" – ये हैं वे शब्द जिनका कम्यून के अनुभव का मूल्यांकन और विश्लेषण करते समय राज्य के संबंध में मार्क्स ने प्रयोग किया था।

यह सब आधी शताब्दी से भी कुछ कम पहले लिखा गया था और अब जनता को मार्क्सवाद का ज्ञान उसके अविकृत रूप में कराने के लिए मानो ज़मीन की खुदाई करनी पड़ती है। पिछली महान क्रान्ति के – जिसे मार्क्स ने स्वयं देखा था – अध्ययन के निष्कर्ष ठीक उसी समय भुला दिये गये जब अगली महान सर्वहारा क्रांतियों का समय आ पहुंचा था।

"...कम्यून के जो अनेकों अर्थ लगाये गये हैं और जिन विभिन्न हितों की उसमें अभिव्यक्ति हुई, उनसे ज़ाहिर होता है कि सरकार के पुराने तमाम रूपों के मुक़ाबले में जो सारतः दमनकारी थे, कम्यून का राजनैतिक रूप पूर्ण रूप से लोचदार था। उसका सच्चा रहस्य यह था – वह बुनियादी तौर से मज़दूर-वर्ग की सरकार था, लूटनेवाले वर्ग के ख़िलाफ़ पैदा करनेवाले वर्ग के संघर्ष का फल था, वह अन्ततः उद्घाटित राजनैतिक ढांचा था, जिसके अन्तर्गत श्रम की आर्थिक मुक्ति का काम पूरा किया जा सकता था...

"इस अन्तिम शर्त के बिना, कम्यूनी व्यवस्था एक असंभावना और मृगमरीचिका होती..."

कल्पनावादी उन राजनैतिक ढांचों को "खोजने" में व्यस्त थे जिनके अन्तर्गत समाज का समाजवादी रूपान्तरण होना था। अराजकतावादियों ने राजनैतिक ढांचों के सवाल को बिलकुल ही छोड़ दिया था। वर्त्तमान सामाजिक-जनवाद के अवसरवादियों ने संसदीय जनवादी राज्य के पूंजीवादी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजनैतिक ढांचों को ही वह अन्तिम सीमा मान लिया था जिसका अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए था ; वे इसी "प्रतिमा" के सामने प्रार्थना में माथा पटकते रहे और उन्होंने इन ढांचों को ध्वंस करने के प्रत्येक प्रयत्न को अराजकतावाद कहकर उनकी निंदा की।

मार्क्स ने समाजवाद और राजनैतिक संघर्ष के सम्पूर्ण इतिहास से यह नतीजा निकाला था कि राज्य का विलोप होना अवश्यम्भावी है, और यह कि उसके विलोप होने का संक्रमणकालीन रूप (राज्य से अ-राज्य में संक्रमण का रूप) "शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग" होगा। लेकिन मार्क्स भविष्य की इस मंज़िल के राजनैतिक ढांचों का उद्‌घाटन करने नहीं. निकले। उन्होंने अपने को फ़ांसीसी इतिहास के सही सही आलोचन, विश्लेषण और वह निष्कर्ष निकालने तक ही सीमित रखा, जिसपर १८५१ के साल ने पहुंचाया था, यानी यह कि स्थिति पूंजीवादी राज्य की मशीनरी का ध्वंस करने की तरफ़ प्रगति कर रही है।

और जब सर्वहारा का क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन फूट पड़ा, तब बावजूद उस आन्दोलन की असफलता के, बावजूद उसके संक्षिप्त जीवन और उसकी स्पष्ट कमजोरी के, मार्क्स ने उन ढांचों का, जो उसने उद्‌घाटित किये थे, अध्ययन शुरू कर दिया।

कम्यून – सर्वहारा क्रान्ति द्वारा "अन्ततः उद्‌घाटित" ढांचा है, जिसके अन्तर्गत श्रम की आर्थिक मुक्ति का कार्य पूरा किया जा सकता है।

कम्यून – सर्वहारा क्रान्ति द्वारा पूंजीवादी राज्य की मशीनरी को ध्वंस करने का पहला प्रयत्न है, वह "अंततः उद्‌घाटित" वह राजनैतिक ढांचा है, जो ध्वंस की गयी मशीनरी का स्थान ले सकता है और उसे लेना चाहिए।

आगे हम देखेंगे कि भिन्न परिस्थितियों में और भिन्न दशाओं में, १९०५ और १९१७ की रूसी क्रान्तियों ने भी कम्यून के ध्येय को जारी रखा है और मार्क्स के मेधावी ऐतिहासिक विश्लेषण की पुष्टि की है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय ४

शेष। एंगेल्स की अतिरिक्त व्याख्याएं

मार्क्स ने कम्यून के अनुभव के महत्त्व के संबंध में बुनियादी चीज़ें बता दी थीं। एंगेल्स ने उसी विषय पर बार-बार विचार किया और मार्क्स के विश्लेषण और निष्कर्षों की व्याख्या की। कभी-कभी तो प्रश्न के दूसरे पहलुओं पर उन्होंने ऐसा सशक्त और स्पष्ट प्रकाश डाला कि उनकी व्याख्याओं पर विशेष रूप से विचार करना ज़रूरी है।

१. "आवास की समस्या"

आवास की समस्या के बारे में अपनी कृति (१८७२) में ही एंगेल्स कम्यून के अनुभव पर विचार कर चुके थे, और राज्य के सम्बन्ध में क्रान्ति के कार्यभार कई बार बता चुके थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस ठोस विषय की जांच-पड़ताल से एक तरफ़ तो सर्वहारा वर्ग के राज्य और वर्तमान राज्य में समानता की बातें—जिनके कारण उन दोनों को ही राज्य कहा जा सकता है—ज़ाहिर हुईं और दूसरी तरफ़, उनकी भिन्नता को इंगित करनेवाली बातें, अर्थात् राज्य के उन्मूलन की दिशा में संक्रमण की बातें ज़ाहिर हुईं।

> "फिर आवास की समस्या को किस तरह हल किया जाये? वर्तमान समाज में उसे किसी भी अन्य सामाजिक समस्या की तरह ही हल किया जाता है: पूर्ति और मांग के आर्थिक रूप से धीरे-धीरे पटरी बैठाकर, जिससे प्रश्न हमेशा फिर नये सिरे से पैदा हो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता है और इसलिए वह कोई हल नहीं है। सामाजिक क्रान्ति इस प्रश्न को किस तरह हल करेगी, यह न केवल जगह और वक़्त की विशेष परिस्थिति पर निर्भर होगा, बल्कि उसका संबंध कई और भी गहरे प्रश्नों से है, जिनमें से एक सबसे बुनियादी प्रश्न गांव और शहर के बीच के विरोध का उन्मूलन है। चूंकि हमारा काम भविष्य के समाज के इन्तज़ाम के बारे में काल्पनिक व्यवस्थाओं की सृष्टि करना नहीं है, इसलिए इस प्रश्न पर यहां विचार करना एकदम व्यर्थ होगा। लेकिन एक चीज़ निश्चित है: बड़े शहरों में अभी से इतने काफ़ी आवास-स्थल मौजूद हैं कि उनसे मकानों की सारी वास्तविक कमी को फ़ौरन दूर किया जा सकता है, बशर्ते कि उनका विवेक से इस्तेमाल किया जाये। स्वाभाविक रूप से यह तभी हो सकता है, जब मकानों को उनके मौजूदा मालिकों से छीन लिया जाये और उनमें बेमकान मज़दूरों या उन मज़दूरों को बसा दिया जाये जिनके वर्त्तमान मकानों में बहुत ज्यादा भीड़ है। सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनैतिक सत्ता की विजय के फ़ौरन बाद सार्वजनिक हित से प्रेरित इस कार्रवाई को उतनी ही आसानी से पूरा किया जा सकेगा, जितनी आसानी से वर्त्तमान राज्य दूसरी चीज़ों को हड़प लेता है और लोगों को दूसरों के घरों में बसा देता है" (जर्मन संस्करण, १८८७, पृष्ठ २२)[21]।

यहां राज्यसत्ता के रूप में परिवर्त्तन पर नहीं, बल्कि केवल उसकी सरगर्मी के अन्तर्य पर विचार किया गया है। हड़पना और दूसरों के मकानों में लोगों को बसाना वर्त्तमान राज्य के हुक़्म से भी होता है। औपचारिक रूप से, सर्वहारा राज्य भी मकानों पर क़ब्ज़ा करने और इमारतों को छीन लेने का "हुक्म" देगा। लेकिन यह स्पष्ट है कि पुरानी कार्यकारी मशीनरी, नौकरशाही, जो पूंजीपति-वर्ग से सम्बंधित है, सर्वहारा राज्य की आज्ञाओं को पूरा करने के सर्वथा अयोग्य होगी।

"...यह बता देना ज़रूरी है कि श्रम के तमाम औज़ारों पर वास्तविक क़ब्ज़े, पूरे उद्योग पर मेहनतकशों के क़ब्ज़े की बात प्रूदों

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के "मुग्रावज़े" की वात से विलकुल उल्टी है। वादवाली वात के ग्रनुसार मज़दूर व्यक्तिगत रूप से रिहायशी मकान, किसानी खेत ग्रौर श्रम के ग्रौज़ारों का मालिक बन जाता है; पहली के ग्रनुसार मकानों, फ़ैक्टरियों ग्रौर श्रम के ग्रौज़ारों के सामूहिक मालिक के रूप में "मेहनतकश" ही रहते हैं ग्रौर, कम से कम संक्रमण-काल के लिए, विना लागत का मुग्रावज़ा लिये व्यक्तियों या संस्थाग्रों को उनका इस्तेमाल करने की इजाज़त शायद ही दिया जायेगा। ठीक इसी तरह ज़मीन की मिल्कियत का उन्मूलन तह-ज़मीनी का उन्मूलन नहीं है, वल्कि समाज के हाथ में, यद्यपि एक परिवर्तित रूप में, उसका ग्रन्तरण है। इसलिए श्रम के सभी ग्रौज़ारों पर मेहनतकशों के वास्तविक क़ब्ज़े के माने यह हरगिज़ नहीं होते कि लगान के सम्वंध बाक़ी नहीं रह सकते" (पृष्ठ ६८)।

इस ग्रंश में इंगित प्रश्न, यानी राज्य के धीरे-धीरे विलुप्त हो जाने के ग्रार्थिक ग्राधार के प्रश्न पर हम ग्रगले ग्रध्याय में विचार करेंगे। एंगेल्स ग्रपनी वात वहुत सावधानी से कहते हैं, वह कहते हैं कि विना लागत के मुग्रावज़े के सर्वहारा राज्य लोगों को "कम से कम संक्रमण-काल के लिए" मकानों के इस्तेमाल की इजाज़त "शायद ही" देगा। सारी जनता की सम्पत्ति के रूप में मकानों के ग्रलग-ग्रलग परिवारों को किराये पर दिये जाने में उनके किराये की उगाही, उनपर निश्चित नियंत्रण ग्रौर मकानों की बंटाई के किसी मानक की कल्पना निहित होती है। इन सारी वातों के लिए राज्य के किसी ढांचे की ज़रूरत है, लेकिन उसके लिए ख़ास तौर से विशेषाधिकारी पदों पर ग्रारूढ़ ग्रफ़सरों की किसी विशेष फ़ौजी ग्रौर नौकरशाही मशीनरी की ज़रूरत नहीं है। जिस स्थिति में विना किराये के मकान देना संभव हो सकेगा, उसमें संक्रमण राज्य के पूर्ण "विलोप" से जुड़ा हुग्रा है।

कम्यून के वाद ग्रौर उसके ग्रनुभव के प्रभाव के तहत ब्लांकीवादियों[22] द्वारा मार्क्सवाद की उसूली स्थिति ग्रपनाए जाने के वारे में लिखते हुए, एंगेल्स ने चलते चलते उस स्थिति को निम्न प्रकार सूत्रवद्ध किया है:

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"...वर्गों और उनके साथ राज्य के उन्मूलन की संक्रमणकालीन मंज़िल के रूप में सर्वहारा वर्ग और सर्वहारा अधिनायकत्व की राजनैतिक कार्रवाइयों की ज़रूरत..." (पृष्ठ ५५)।

आलोचना में बाल की खाल निकालने के आदी लोगों और "मार्क्सवाद के" पूंजीवादी "विनाशकों" को "राज्य के उन्मूलन" की मान्यता और 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' के उपरोक्त उद्धरण के इस सूत्र को अराजकतावादी कहकर उसकी अस्वीकृति में शायद विरोध दीखेगा। अवसरवादी अगर एंगेल्स पर भी "अराजकतावादी" होने का ठप्पा लगा दें तो कोई आश्चर्य न होगा, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों पर अराजकतावाद का अभियोग लगाना सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के लिये अधिकाधिक आम होता जा रहा है।

मार्क्सवाद ने हमेशा सिखाया है कि वर्गों के ख़ात्मे के साथ राज्य भी ख़त्म हो जायेगा। "राज्य के धीरे-धीरे विलोप" के सम्बंध में 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' का वह प्रसिद्ध अंश अराजकतावादियों पर राज्य के उन्मूलन के केवल पक्ष-पोषण का नहीं, बल्कि यह प्रचार करने का अभियोग लगाता है कि राज्य का "फ़ौरन" उन्मूलन हो सकता है।

इस बात को देखते हुए कि राज्य के उन्मूलन के प्रश्न पर अराजकतावाद के साथ मार्क्सवाद के संबंध को आज का हावी "सामाजिक-जनवादी" सिद्धान्त पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर रखता है, अराजकतावादियों के साथ मार्क्स और एंगेल्स की एक बहस की याद करना ख़ास तौर से लाभदायक होगा।

२. अराजकतावादियों के साथ विवाद

यह विवाद १८७३ में हुआ था। प्रूदोंवादियों[23], "स्वायत्ततावादियों" या "प्राधिकार विरोधियों" के ख़िलाफ़ मार्क्स और एंगेल्स ने इटली के एक समाजवादी संग्रह में लेख लिखे थे, और जर्मन भाषा में ये लेख १९१३ में जाकर «*Neue Zeit*»[24] में निकले थे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"...अगर मज़दूर-वर्ग का राजनैतिक संघर्ष क्रान्तिकारी रूप ग्रहण कर लेता है," अराजकतावादियों द्वारा राजनीति की अस्वीकृति का मज़ाक़ उड़ाते हुए मार्क्स ने लिखा था, "अगर पूंजीपति-वर्ग के अधिनायकत्व के स्थान में मज़दूर अपना क्रान्तिकारी अधिनायकत्त्व क़ायम कर लेते हैं, तो वे सिद्धान्तों का उल्लंघन करने का भयानक अपराध करते हैं, क्योंकि अपने हथियार डाल देने और राज्य को मिटा देने के वजाय, वे राज्य को एक क्रान्तिकारी और संक्रमणकालीन रूप दे देते हैं, ताकि वे अपनी तुच्छ, गन्दी, रोजमर्रा की ज़रूरतों को सन्तुष्ट कर सकें, ताकि वे पूंजीपति-वर्ग के विरोध को कुचल सकें..." (*«Neue Zeit»*, १९१३–१९१४, XXXII, १, पृष्ठ ४०)[25]।

अराजकतावादियों का खण्डन करते समय मार्क्स राज्य के सिर्फ़ ऐसे "उन्मूलन" के ख़िलाफ़ लड़े थे! उन्होंने इस मत का विरोध नहीं किया था कि जब वर्ग ग़ायब हो जायेंगे तो राज्य भी ग़ायब हो जायेगा, या जब वर्गों का उन्मूलन कर दिया जायेगा तो राज्य का भी उन्मूलन कर दिया जायेगा। उन्होंने विरोध किया था इस प्रस्ताव का कि मज़दूर हथियारों के, संगठित बलप्रयोग के, यानी राज्य के इस्तेमाल को, जिससे "पूंजीपति-वर्ग के विरोध को कुचलने" का काम लेना है, छोड़ दें।

अराजकतावाद के विरुद्ध अपने संघर्ष के वास्तविक अर्थ के विकृत किये जाने को रोकने के लिये उन्होंने सोच-समझकर सर्वहारा वर्ग के लिये आवश्यक राज्य के "क्रान्तिकारी और अस्थायी रूप" पर ज़ोर दिया था। सर्वहारा वर्ग को राज्य की ज़रूरत केवल अस्थायी रूप से होती है। लक्ष्य के रूप में राज्य के उन्मूलन के सम्बंध में हम अराजकतावादियों से ज़रा भी असहमत नहीं हैं। हमारा कहना है कि इस लक्ष्य को पूरा करने के लिये ही हमें शोषकों के विरुद्ध राज्य की सत्ता के उपकरणों, साधनों और तरीक़ों का अस्थायी तौर से इस्तेमाल करना चाहिये, – उसी तरह जिस तरह वर्गों के उन्मूलन के लिये उत्पीड़ित वर्ग का अधिनायकत्व अस्थायी रूप से ज़रूरी होता है। अराजकतावादियों के मुक़ावले अपनी वात को कहने के लिये मार्क्स सवसे पैना और स्पष्ट तरीक़ा अख़्तियार करते हैं: पूंजीपतियों के जूए को उतार फेंकने के वाद मज़दूर अपने "हथियार डाल

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दें" या पूंजीपतियों के विरोध को कुचलने के लिये उनका इस्तेमाल करें? लेकिन एक वर्ग का दूसरे वर्ग के ख़िलाफ़ हथियारों का व्यवस्थित रूप से इस्तेमाल राज्य का "अस्थायी रूप" नहीं तो क्या है?

प्रत्येक सामाजिक-जनवादी को अपने से सवाल करना चाहिये: राज्य के प्रश्न पर अराजकतावादियों के साथ विवाद में इस प्रश्न को क्या वह इसी ढंग से पेश करता आया है? दूसरे इन्टरनेशनल की आधिकारिक समाजवादी पार्टियों की विशाल बहुसंख्या क्या उसे इसी ढंग से पेश करती आयी है?

एंगेल्स ने इन्हीं विचारों का कहीं अधिक ब्योरे से और अधिक सरल ढंग से प्रतिपादन किया है। वह सबसे पहले प्रूदोंवादियों के उलझे हुए विचारों का मज़ाक़ उड़ाते हैं, जो अपने को "प्राधिकार विरोधी" कहते थे, यानी जो हर तरह के प्राधिकार, हर प्रकार की मातहती, हर क़िस्म की सत्ता को मानने से इनकार करते थे। एंगेल्स ने कहा, किसी फ़ैक्टरी, किसी रेल, समुद्र में चलते किसी जहाज़ को ले लो—क्या यह स्पष्ट नहीं है कि इन जटिल तकनीकी संस्थानों में से, जो मशीन के उपयोग और बहुत-से लोगों के व्यवस्थित सहयोग पर आधारित हैं, एक भी, बिना कुछ न कुछ मातहती, और इसलिये, बिना कुछ न कुछ सत्ता या ताक़त के काम नहीं कर सकता?

> "...जब ये दलीलें मैं सबसे कट्टर प्राधिकार-विरोधियों के मुक़ाबले रखता हूं, तो वे मुझे केवल यही उत्तर दे सकते हैं कि "हां, यह सच है, लेकिन यहां पर उस प्राधिकार का सवाल नहीं है, जो हम प्रतिनिधियों को सौंपते हैं, बल्कि सवाल निश्चित आदेश का है।" ये भलेमानस समझते हैं कि किसी चीज़ का नाम बदलकर वे चीज़ों को भी बदल सकते हैं..."[26]

इस प्रकार यह दिखला चुकने के बाद कि प्राधिकार और स्वायत्तता सापेक्ष अवधारणाएं हैं, कि सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के साथ उनके इस्तेमाल का क्षेत्र भी भिन्न होता जाता है, कि उन्हें बिलकुल निरपेक्ष समझना बेवक़ूफ़ी है, और आगे यह कहकर कि मशीनों के उपयोग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रौर बड़े पैमाने के उत्पादन का क्षेत्र निरन्तर बड़ा होता जा रहा है, एंगेल्स प्राधिकार की श्राम बहस को छोड़कर राज्य के प्रश्न को लेते हैं।

वह लिखते हैं: "...श्रगर स्वयत्ततावादी केवल इतना ही कहकर बस करते कि भविष्य का सामाजिक संगठन प्राधिकार को उसी हद तक सीमित रखेगा जिस हद तक उत्पादन की श्रवस्थाएं उसे श्रनिवार्य बना देती हैं, तो उनके साथ सहमति संभव होती, लेकिन वे उन सब तथ्यों की श्रोर से श्रांखें बन्द कर लेते हैं जो प्राधिकार को ज़रूरी बना देते हैं श्रौर वे शब्द के ऊपर टूट पड़ते हैं।

"प्राधिकार विरोधी केवल राजनैतिक प्राधिकार के विरुद्ध, राज्य के विरुद्ध चिल्लाकर ही बस क्यों नहीं करते? इस बात पर सभी समाजवादी एकमत हैं कि श्रानेवाली सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप राज्य श्रौर उसके साथ-साथ राजनैतिक प्राधिकार भी ख़त्म हो जायेगा, श्रर्थात् सार्वजनिक काम श्रपना राजनैतिक रूप खो देंगे श्रौर सामाजिक हितों की निगरानी के लिये महज़ व्यवस्था संबंधी कामों में बदल जायेंगे। लेकिन प्राधिकार विरोधियों की मांग है कि राजनैतिक राज्य को तुरन्त ही, उसे जन्म देनेवाली सामाजिक परिस्थितियों का श्रन्त करने से पहले ही, ख़त्म कर दिया जाये। उनकी मांग है कि सामाजिक क्रान्ति का पहला काम यह होना चाहिये कि वह प्राधिकार को ख़त्म कर दे।

"इन भलेमानसों ने क्या कभी क्रान्ति देखी है? क्रान्ति तो बिना किसी शक के श्रधिकतम संभव प्राधिकारी चीज़ है। वह एक ऐसी कार्रवाई होती है जिसके द्वारा श्राबादी का एक भाग उसके दूसरे भाग पर राइफ़लों, संगीनों श्रौर तोपों की मदद से, यानी बहुत ही प्राधिकारी साधनों द्वारा श्रपनी इच्छा लादती है। श्रौर विजयी पक्ष उस श्रातंक के श्राधार पर श्रपनी हुकूमत क़ायम रखता है, जो उसके हथियार प्रतिक्रियावादियों के दिल में पैदा करते हैं। श्रगर पेरिस कम्यून पूंजीपति-वर्ग के ख़िलाफ़ हथियारबन्द जनता के प्राधिकार का इस्तेमाल न करता, तो क्या वह एक दिन भी चल सकता था? उल्टे, क्या हमें उसपर यह दोष नहीं लगाना चाहिये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि उसने इस प्राधिकार का इस्तेमाल बहुत ही कम किया? इसलिये, दो में से एक ही बात हो सकती है: या तो प्राधिकार विरोधी यह नहीं जानते कि वे क्या कह रहे हैं और उस हालत में वे केवल भ्रम फैला रहे हैं; या अगर जानते हैं, तो सर्वहारा वर्ग के साथ ग़द्दारी कर रहे हैं। दोनों ही हालतों में वे महज़ प्रतिक्रियावाद की ख़िदमत करते हैं" (पृष्ठ ३९)[27]।

इस तर्क का सम्बंध उन प्रश्नों से है, जिनकी जांच राज्य के धीरे-धीरे विलुप्त होने के दौरान राजनीति और अर्थव्यवस्था के पारस्परिक सम्बंध के सिलसिले में की जानी चाहिये (इस पर अगले अध्याय में विचार किया गया है)। वे प्रश्न हैं: सार्वजनिक कामों का राजनैतिक कामों से सरल प्रशासनिक कामों में रूपान्तरण, और "राजनैतिक राज्य"। यह बादवाली अभिव्यक्ति, जिससे विशेष रूप से ग़लतफ़हमी फैल सकती है, राज्य के धीरे-धीरे विलुप्त होने की प्रक्रिया की ओर इशारा करती है: इस प्रक्रिया की एक विशेष अवस्था में विलुप्त होते हुए राज्य को अराजनैतिक राज्य कहा जा सकता है।

फिर, एंगेल्स के इस तर्क में सबसे अपूर्व चीज़ वह ढंग है, जिस ढंग से उन्होंने अराजकतावादियों के ख़िलाफ़ अपनी बात कही है। एंगेल्स के शिष्य होने का दावा करनेवाले सामाजिक-जनवादी १८७३ के बाद से लाखों बार इस प्रश्न पर अराजकतावादियों के साथ बहस कर चुके हैं, लेकिन उन्होंने उस तरह बहस नहीं की, जिस तरह मार्क्सवादी कर सकते हैं और उन्हें करनी चाहिये। राज्य के उन्मूलन के बारे में अराजकतावादियों की धारणा उलझी हुई और अ-क्रान्तिकारी है—एंगेल्स ने बात को इस तरह कहा था। अराजकतावादी ठीक क्रान्ति को, उसके उठान और विकास को, बलप्रयोग, प्राधिकार, सत्ता और राज्य के संबंध में उसके विशेष कार्यभारों को, नहीं देखना चाहते।

आधुनिक सामाजिक-जनवादियों द्वारा अराजकतावाद की यह आम आलोचना शुद्धतम दक़ियानूसी क्षुद्रता बनकर रह जाती है: "हम लोग राज्य को मानते हैं, अराजकतावादी उसे नहीं मानते!"। स्वाभाविक ही है कि जो मज़दूर ज़रा भी क्रान्तिकारी स्वभाव के और सोचने में समर्थ हैं, वे ऐसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओछी बातों से दूर भागते हैं। एंगेल्स कुछ दूसरी ही चीज़ कहते हैं। वह इस चीज़ पर ज़ोर देते हैं कि सभी समाजवादी मानते हैं कि समाजवादी क्रान्ति के परिणामस्वरूप राज्य ग़ायब हो जायेगा। इसके बाद वह क्रान्ति के प्रश्न पर ठोस रूप से विचार करते हैं—ठीक उसी प्रश्न पर जिसे अवसरवादिता के कारण सामाजिक-जनवादी आम तौर से टाल जाते हैं और "हल करने के लिये" एक प्रकार से सिर्फ़ अराजकतावादियों के हाथ में छोड़ देते हैं। और सवाल को उठाकर एंगेल्स उसका सीधे सीधे सामना करते हैं; वह पूछते हैं: क्या कम्यून को राज्य की क्रान्तिकारी सत्ता का, अर्थात् शासक वर्ग के रूप में संगठित हथियारबन्द सर्वहारा वर्ग का, इस्तेमाल और ज्यादा नहीं करना चाहिये था?

प्रभुत्वशील अधिकारी सामाजिक-जनवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के ठोस कार्यभारों के प्रश्न को आम तौर से या तो दक़ियानूसी ठट्ठेबाज़ी के साथ, या बहुत से बहुत हेत्वाभासी टाल-मटोल के साथ "इन्तज़ार करो और देखो" कहकर ख़त्म कर देता था। इस तरह के सामाजिक-जनवाद के बारे में अराजकतावादियों का यह कहना उचित ही था कि वह क्रान्ति के लिये मज़दूर-वर्ग को शिक्षित करने के कार्यभार से मुंह मोड़ रहा है। बैंकों और राज्य के सम्बंध में सर्वहारा को क्या करना चाहिये और किस तरह करना चाहिये—इस बात के अधिकतम ठोस अध्ययन के लिये ही एंगेल्स ने पिछली सर्वहारा क्रान्ति के अनुभव का उपयोग किया है।

३. बेबेल के नाम पत्र

राज्य के संबंध में मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं में उल्लेखनीय, और शायद अधिकतम उल्लेखनीय बात वह है, जो बेबेल के नाम लिखे गये एंगेल्स के १८–२८ मार्च १८७५ के पत्र के नीचे दिये गये अंश में है। इस पत्र को, लगे हाथों बता दें कि जहां तक हम जानते हैं, बेबेल ने अपने संस्मरणों (*«Aus meinem Leben»*) के दूसरे खण्ड में प्रकाशित किया था, जो १९११ में, यानी उसके लिखे जाने और भेजे जाने के छत्तीस वर्ष बाद, निकला था।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एंगेल्स ने यह पत्र बेबेल को गोथा कार्यक्रम के उसी मस्विदे की आलोचना करते हुए लिखा था, जिसकी आलोचना मार्क्स ने ब्राके[28] के नाम अपने प्रसिद्ध पत्र में की थी। राज्य के प्रश्न का ख़ास तौर से ज़िक्र करते हुए एंगेल्स ने लिखा था:

"...स्वतंत्र जनता का राज्य स्वतंत्र राज्य में बदल गया। अगर इन शब्दों को व्याकरण के अर्थ में लें, तो स्वतंत्र राज्य वह राज्य है जो अपने नागरिकों के प्रति स्वतंत्र है, और इसलिए एक ऐसा राज्य है, जिसकी सरकार निरंकुश है। राज्य के सम्बंध में इस सारी बकवास को ख़त्म कर देना चाहिए, ख़ास तौर से कम्यून के बाद, जो शब्द के सही मानों में राज्य नहीं रह गया था। "जनता के राज्य" की बात अराजकतावादियों द्वारा हमारे सामने उछाली गयी है यद्यपि प्रूदों के ख़िलाफ़ मार्क्स की पुस्तक[29] में, और बाद में, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में, साफ़-साफ़ ऐलान किया गया है कि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बाद राज्य अपने आप घुल जायेगा (sich auflöst) और अन्त में ग़ायब हो जायेगा। चूंकि राज्य केवल एक अस्थायी संस्था है, जिसका इस्तेमाल संघर्ष के दौरान, क्रान्ति के दौरान, अपने दुश्मनों को बलपूर्वक दबाकर रखने के लिए किया जाता है, इसलिए स्वतंत्र जनता के राज्य की बात करना सरासर बकवास है। सर्वहारा वर्ग को जब तक राज्य की आवश्यकता बनी रहती है, तब तक उसकी आवश्यकता उसे स्वतंत्रता के लिए नहीं, बल्कि अपने दुश्मनों को दबाने के लिए होती है, और ज्यों ही स्वतंत्रता की बात करना संभव हो जाता है, त्यों ही राज्य जैसी कोई चीज़ नहीं रह जाता। इसलिए, हम तजवीज़ करेंगे कि हर जगह राज्य शब्द की जगह 'समुदाय' (Gemeinwesen) शब्द का इस्तेमाल किया जाये – यह एक अच्छा पुराना जर्मन शब्द है, जो फ़्रांसीसी शब्द 'कम्यून' का भली भांति प्रतिनिधित्व कर सकता है" (मूल जर्मन संस्करण का पृष्ठ ३२१–३२२)।

इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि इस पत्र में पार्टी के जिस कार्यक्रम का ज़िक्र है, उसकी आलोचना मार्क्स ने एक दूसरे पत्र में ऊपर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पत्र के लिखे जाने के कुछ ही हफ़्तों बाद (मार्क्स के पत्र पर ५ मई १८७५ की तारीख़ पड़ी है) की थी, और उस समय एंगेल्स मार्क्स के साथ लन्दन में रह रहे थे। इसलिए, जब एंगेल्स अपने अन्तिम वाक्य में "हम" कहते हैं, तो निस्सन्देह वह अपने साथ साथ मार्क्स की तरफ़ से भी जर्मन मज़दूर पार्टी के नेता के सामने प्रस्ताव करते हैं कि "राज्य" शब्द को कार्यक्रम में से निकाल दिया जाये और उसकी जगह पर "समुदाय" शब्द का इस्तेमाल किया जाये।

अवसरवादियों की सुविधा के लिए तोड़े-मरोड़े गये "मार्क्सवाद" की आजकल की प्रमुख विभूतियों को अगर कार्यक्रम को इस तरह से सुधारने की बात सुझायी जाये, तो वे "अराजकतावाद" की पुकार लगाकर कितना होहल्ला मचायेंगे!

उन्हें होहल्ला मचाने दो। इसके लिए पूंजीपति-वर्ग उनको शाबाशी देगा।

लेकिन हम लोग अपना काम करते जायेंगे। अपनी पार्टी के कार्यक्रम को सुधारते समय हमें बिना डगमगाये एंगेल्स और मार्क्स की सलाह पर ध्यान देना चाहिए, जिससे हम सत्य के और नज़दीक पहुंच सकें, तमाम तोड़-मरोड़ को अलग करके मार्क्सवाद की पुनस्स्थापना कर सकें और मज़दूर-वर्ग की मुक्ति की लड़ाई को और भी सही तरीक़े से मार्ग दिखा सकें। निस्सन्देह एंगेल्स और मार्क्स की सलाह को मानने के बारे में बोल्शेविकों के बीच किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठायी जायेगी। एकमात्र कठिनाई अगर उठ सकती है, तो वह शायद शब्दों के बारे में होगी। जर्मन भाषा में "समुदाय" का अर्थ रखनेवाले दो शब्द हैं, जिनमें से एंगेल्स ने एक का प्रयोग किया है, जिसका मतलब एक समुदाय नहीं, बल्कि समुदायों का कुल योग, समुदायों की व्यवस्था है। रूसी भाषा में ऐसा एक भी शब्द नहीं है, और हो सकता है कि हमें फ़्रांसीसी शब्द "कम्यून" को ही इस्तेमाल करने का फ़ैसला करना पड़े, गोकि उसकी भी अपनी कमियां हैं।

"शब्द के सही मानों में कम्यून राज्य नहीं रह गया था"—सिद्धांत की दृष्टि से एंगेल्स ने यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही है। जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है, उसके बाद यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। चूंकि कम्यून को आबादी की बहुसंख्या को नहीं बल्कि, उसकी एक अल्पसंख्या

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को (शोषकों को) दवाना था, इसलिए उसका राज्य-रूप मिट रहा था। उसने पूंजीवादी राज्य की मशीनरी का ध्वंस कर दिया था। विशेष दमनकारी शक्ति का स्थान अब ख़ुद पूरी आवादी ने ले लिया था। शब्द के सही मानों में यह सब कुछ राज्य से भिन्न था। और, कम्यून अगर जीवित रहता, तो उसमें राज्य के जितने भी चिन्ह थे, वे सब अपने आप "धीरे-धीरे विलुप्त हो जाते"। उसे राज्य की संस्थाओं को "ख़त्म करने" की ज़रूरत न पड़ती: जब उनके पास करने को कुछ न रह जाता, तो उनका काम भी ख़त्म हो जाता।

"'जनता के राज्य' की वात अराजकतावादियों द्वारा हमारे सामने उछाली गई है।" यह कहते समय एंगेल्स के दिमाग़ में ख़ास तौर से वकूनिन और जर्मन सामाजिक-जनवादियों पर किये गये उनके आक्रमण थे। एंगेल्स ने स्वीकार किया है कि जहां तक "जनता के राज्य" का सवाल था, वहां तक ये आक्रमण सही थे, क्योंकि "जनता का राज्य" भी उतना ही अर्थहीन और समाजवाद से दूर था, जितना "स्वतंत्र जनता का राज्य"। एंगेल्स ने कोशिश की थी कि अराजकतावादियों के ख़िलाफ़ जर्मनी के सामाजिक-जनवादियों के संघर्ष को सही रास्ते पर लगा दिया जाये, उस संघर्ष को उसूली तौर से सही वना दिया जाये, उसमें से "राज्य" के वारे में अवसरवादी पूर्वाग्रहों को दूर कर दिया जाये। कितने दुख की वात है! एंगेल्स के पत्र को छत्तीस वर्ष तक दवा रखा गया। आगे चलकर हम देखेंगे कि एंगेल्स के पत्र के छप जाने के वाद भी काउत्स्की वस्तुतः उन्हीं ग़लतियों को अड़ियलपन के साथ वार-वार दोहराते रहे, जिनके विरुद्ध एंगेल्स ने चेतावनी दी थी।

वेवेल ने एंगेल्स को अपने २१ सितम्वर, १८७५ के पत्र द्वारा उत्तर दिया, जिसमें, और वातों के साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा कि कार्यक्रम के मस्विदे पर एंगेल्स की आलोचना से वह "पूर्णतया सहमत थे" और यह कि उन्होंने लीव्कनेख़्त को इसलिए लताड़ा था कि वह रियायतें करने को तैयार थे (वेवेल के संस्मरणों के जर्मन संस्करण का खण्ड २, पृष्ठ ३३४)। लेकिन यदि हम वेवेल की पुस्तिका 'हमारे उद्देश्य' को लें, तो हम देखेंगे कि राज्य के सम्वंध में उसमें जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे विलकुल ग़लत हैं:

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"वर्ग-शासन पर आधारित राज्य को बदलकर जनता का राज्य बना देना चाहिये" («*Unsere Ziele*», जर्मन संस्करण, १८८६, पृष्ठ १४)।

वेबेल की पुस्तिका के नवें (नवें!) संस्करण में यह छपा था! यह आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्य के बारे में बार-बार दोहराये जानेवाले इस तरह के अवसरवादी विचारों को जर्मन सामाजिक-जनवादियों ने अपना लिया था, ख़ास तौर से जबकि एंगेल्स की क्रांतिकारी व्याख्याओं को अच्छी तरह दबा रखा गया था और जबकि जीवन की सारी परिस्थितियां ऐसी थीं, जिन्होंने जनता को बहुत दिनों तक के लिये क्रान्ति से "विलग कर दिया" था।

४. एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम के मस्विदे की आलोचना

राज्य के सम्बन्ध में मार्क्सवादी सिद्धांत की जांच-पड़ताल करते समय एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम[30] के मस्विदे पर एंगेल्स की आलोचना की अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि उस आलोचना में मुख्य रूप से राज्य के ढांचे के सम्बन्ध में सामाजिक-जनवादियों के अवसरवादी विचारों को ही लिया गया था; वह आलोचना एंगेल्स ने काउत्स्की के पास २९ जून, १८९१ को भेजी थी, लेकिन दस वर्ष बाद «*Neue Zeit*» में छपी थी।

चलते चलते हम यह भी बता दें कि उसी में अर्थव्यवस्था के प्रश्नों पर भी एंगेल्स ने बहुत ही महत्त्व की बात कही है, जिससे पता चलता है कि आधुनिक पूंजीवाद के अन्दर होनेवाले परिवर्त्तनों पर वह कितने ध्यानपूर्वक और विचारपूर्वक नज़र रखते थे, और इसी लिये, वह किस प्रकार हमारे युग के, साम्राज्यवादी युग के, कार्यभार भी एक हद तक पहले ही देख सके थे। वह उद्धरण यह है: कार्यक्रम के मस्विदे में पूंजीवाद की विशेषता बताते हुए प्रयुक्त शब्द "नियोजनहीनता" (Planlosigkeit), के सम्बन्ध में एंगेल्स लिखते हैं:

"...जब हम ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियों से उन ट्रस्टों की ओर बढ़ते हैं, जो उद्योग-धन्धों की पूरी पूरी शाखाओं पर नियंत्रण और इजारे-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दारी रखते हैं, तो केवल निजी उत्पादन ही नहीं, बल्कि नियोजनहीनता भी ख़त्म हो जाती है" («*Neue Zeit*», XX, १, १६०१-१६०२, पृष्ठ ८)।

इस कथन में वह चीज़ मौजूद है, जो पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था, अर्थात् साम्राज्यवाद, को सैद्धान्तिक रूप से समझने के लिये सबसे आवश्यक है, यानी यह कि पूंजीवाद एकाधिकारी पूंजीवाद बन जाता है। पूंजीवाद शब्द पर ज़ोर देना ज़रूरी है, क्योंकि यह ग़लत पूंजीवादी-सुधारवादी धारणा बहुत फैली हुई है कि एकाधिकारी पूंजीवाद या राजकीय-एकाधिकारी पूंजीवाद, पूंजीवाद नहीं रह गया है, बल्कि उसे "राजकीय समाजवाद" या ऐसी ही और कोई चीज़ कहा जा सकता है। निस्सन्देह, पूर्ण नियोजन को न ट्रस्टों ने पैदा किया है, न आज कर रहे हैं और न कर ही सकते हैं। लेकिन वे चाहे जितना भी नियोजन करें, पूंजीपति थैलीशाह उत्पादन की माला का राष्ट्रीय पैमाने पर, और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर भी, चाहे जितना भी पेशगी हिसाब लगायें, और वे चाहे जितना भी व्यवस्थित रूप से उसे चलायें, हम फिर भी पूंजीवाद के अन्तर्गत ही रहते हैं–यह सच है कि यह पूंजीवाद की नयी मंज़िल है, लेकिन निस्सन्देह वह अभी भी पूंजीवाद ही है। इस तरह के पूंजीवाद की समाजवाद से "समीपता" सर्वहारा वर्ग के सच्चे प्रतिनिधियों के लिये इस बात का प्रमाण होना चाहिये कि समाजवादी क्रान्ति समीप, सुगम, व्यावहारिक और तात्कालिक है। उसे इस प्रकार की क्रान्ति से इनकार को बर्दाश्त करने की या पूंजीवाद को और आकर्षक रूप में चित्रित करने की, जिसकी कोशिश में तमाम सुधारवादी लगे हुए हैं, दलील नहीं होनी चाहिये।

लेकिन, हम फिर राज्य के प्रश्न पर लौटें। इस पत्र में एंगेल्स ने तीन अत्यंत मूल्यवान सुझाव रखे हैं: पहले, जनतंत्र के सम्बंध में; दूसरे, राष्ट्रीय समस्या और राज्य के स्वरूप के पारस्परिक सम्बंध के बारे में; और, तीसरे, स्थानीय स्वशासन के सम्बंध में।

जहां तक जनतंत्र का सम्बंध है, एंगेल्स ने उसे ही एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम के मस्विदे की अपनी आलोचना का मूल केन्द्र बनाया था। और अगर हम इस बात की याद करें कि एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम को तमाम अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनवादी पार्टियों में कितना महत्त्व मिला है, कि वह दूसरे इन्टरनेशनल की सभी पार्टियों के लिए एक ग्रादर्श बन गया है, तो यह विना किसी ग्रतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि उसके ज़रिये एंगेल्स ने पूरे दूसरे इंटरनेशनल की ग्रवसरवादिता की ग्रालोचना की थी।

> एंगेल्स लिखते हैं: "मस्विदे की राजनैतिक मांगों में एक बहुत बड़ी कमी है। जो चीज़ वास्तव में कही जानी चाहिये थी, वही उसमें नहीं है" (शब्दों पर ज़ोर एंगेल्स का है)।

ग्रौर, ग्रागे चलकर वह इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि जर्मन संविधान १८५० के घोरतम प्रतिक्रियावादी संविधान की ही एक नक़ल है, कि राइख़स्टाग, जैसा कि विल्हेल्म लीब्कनेख़्त ने कहा था, "निरंकुशता को छिपाने के लिये एक ग्राड़" है; ग्रौर यह कि ऐसे संविधान के ग्राधार पर, जोकि तमाम छोटी रियासतों की मौजूदगी को ग्रौर जर्मनी की छोटी-छोटी रियासतों के संघ को क़ानूनी मानता हो, "श्रम के तमाम उपकरणों को सार्वजनिक सम्पत्ति वनाने की" इच्छा रखना "सरासर वेतुकी बात" है।

> यह पूरी तरह जानते हुए कि कार्यक्रम में जर्मनी के ग्रन्दर जनतंत्र की स्थापना की मांग को शामिल करना क़ानूनी तौर पर ग्रसंभव है, एंगेल्स ग्रागे कहते हैं: "उसके बारे में बात करना ख़तरनाक है।" लेकिन एंगेल्स इस प्रत्यक्ष बात को मानकर चुप नहीं रह जाते जो "सब को" संतुष्ट कर देती है। वह ग्रागे कहते हैं: "लेकिन फिर भी, प्रश्न को किसी न किसी तरह ग्रागे वढ़ाना ज़रूरी है। यह कितना ज़रूरी है, यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि ठीक ग्राजकल ही सामाजिक-जनवादी पार्टियों के ग्रख़बारों के वहुत वड़े भाग के ग्रन्दर ग्रवसरवादिता किस तरह घुस (einreißende) रही है। समाजवादियों के विरुद्ध क़ानून[31] के फिर से लागू किए जाने के डर से, ग्रौर उस क़ानून के शासन-काल में दिए गए नाना ग्रसामयिक वक्तव्यों की याद करके, वे ग्रब चाहते हैं कि पार्टी इस बात को मान ले कि जर्मनी की मौजूदा क़ानूनी व्यवस्था पार्टी की तमाम मांगों को शान्तिमय साधनों से पूरा करने के लिए काफ़ी है..."

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस बुनियादी बात पर एंगेल्स ख़ास तौर से ज़ोर देते हैं कि जर्मनी के सामाजिक-जनवादी समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून के फिर से लागू कर दिये जाने के भय के कारण ऐसा कर रहे थे और वह इसे निस्संकोच अवसरवाद कहते हैं। वह ऐलान करते हैं कि ठीक इसी लिए कि जर्मनी में न जनतंत्र था, न आज़ादी, "शान्तिमय" मार्ग के सब स्वप्न बिलकुल मूर्खतापूर्ण थे। अपने हाथों को न बंधने देने के बारे में एंगेल्स काफ़ी सतर्क हैं। वह मानते हैं कि जनतंत्रवादी या बहुत ही स्वतंत्र देशों में समाजवाद की ओर शान्तिमय विकास की "कल्पना की जा सकती है" (केवल "कल्पना की जा सकती है"!)। लेकिन, जर्मनी में, वह फिर कहते हैं:

"...जर्मनी में, जहां सरकार लगभग सर्वशक्तिशाली है और राइख़स्टाग तथा अन्य प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं के हाथ में कोई वास्तविक ताक़त नहीं है—जर्मनी में ऐसी बात का ऐलान करना—और वह भी तब, जब ऐसा करने की कोई ज़रूरत भी नहीं है—इसके माने हैं निरंकुशता पर से नाममात्र के आवरण को हटाकर उसके नंगेपन को ढकने के लिए ख़ुद पर्दा बन जाना..."

जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी के अधिकांश अधिकारी नेता, जिन्होंने एंगेल्स की इस सलाह को दबा दिया था, वास्तव में निरंकुशता को ढंकने का एक पर्दा साबित हुए।

"...अन्ततोगत्वा इस तरह की नीति पार्टी को गुमराह ही कर सकती है। आम, अमूर्त राजनैतिक प्रश्नों को उठाकर सामने रख दिया गया है, और इस तरह उन प्रश्नों को जो तात्कालिक हैं, ठोस हैं, जो पहली महान घटनाओं के घटते ही, पहले राजनैतिक संकट के आते ही, अपने आप सामने आ जाते हैं, उन्हें छिपा दिया गया है। इसका परिणाम इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि ठीक निर्णयात्मक क्षण में पार्टी अचानक निस्सहाय हो जाये, ठीक निर्णयात्मक प्रश्नों के सम्बन्ध में अस्पष्टता और अनैक्य का बोलबाला रहे, क्योंकि इन प्रश्नों पर कभी विचार ही नहीं किया गया है...

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अपने समय के क्षणिक हितों के लिए महान और मुख्य दृष्टिकोण का यह विस्मरण, बाद के परिणामों का विचार किये बिना घड़ी भर की सफलता के लिए यह संघर्ष और प्रयास, वर्तमान के लिए भविष्य के आन्दोलन की यह क़ुर्बानी, हो सकता है कि कोई 'ईमानदारी से' करता हो, लेकिन वह अवसरवादिता है और रहेगी, और 'ईमानदार' अवसरवादिता संभवतः सबसे ख़तरनाक अवसरवादिता होती है...

"अगर कोई चीज़ पक्की है तो वह यह कि हमारी पार्टी और मज़दूर-वर्ग केवल जनवादी जनतंत्र के अंतर्गत ही प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं। जैसा कि महान फ़्रांसीसी क्रान्ति पहले ही दिखा चुकी है, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के लिए भी यही विशिष्ट रूप है..."

यहां उस मूल धारणा को, जो मार्क्स की तमाम रचनाओं के अन्दर एक मूल सूत्र की तरह फैली हुई है, यानी यह कि जनवादी जनतंत्र सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का निकटतम रूप है, एंगेल्स ने ख़ास तौर से स्पष्ट रूप में दोहराया है। क्योंकि इस तरह के जनतंत्र में—जो पूंजी के आधिपत्य को, और इसी लिए जनता के उत्पीड़न और वर्ग-संघर्ष को, ज़रा भी ख़त्म नहीं करता—यह संघर्ष अनिवार्य रूप से इस तरह फैलता, विकसित होता, उभरता और तेज़ होता है कि, ज्यों ही उत्पीड़ित जनता के बुनियादी हितों को सन्तुष्ट करने की संभावना पैदा हो जाती है, त्यों ही उस संभावना को अनिवार्यतः और एकमात्र सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में, उस जनता के ऊपर सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के रूप में हासिल कर लिया जाता है। पूरे दूसरे इंटरनेशनल के लिए ये भी मार्क्सवाद के "भूले हुए शब्द हैं" और १९१७ की रूसी क्रान्ति की पहली छमाही के दौरान मेन्शेविक पार्टी के इतिहास ने ख़ास तौर से स्पष्ट रूप से ज़ाहिर कर दिया कि इन्हें भुला दिया गया है।

आबादी की जातीय रचना के प्रसंग में संघीय जनतंत्र के प्रश्न पर एंगेल्स ने लिखा था :

"वर्तमान जर्मनी का" (जिसका प्रतिक्रियावादी राजतांत्रिक संविधान है, और जो उतने ही प्रतिक्रियावादी ढंग से छोटी-छोटी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसी रियासतों में बंटा हुआ है जिससे कि 'प्रशियाशाही' की विशेषताएं कुल जर्मनी में विलयित होने के बजाय स्थायी बन रही हैं) "स्थान क्या चीज़ ले? मेरी राय में, सर्वहारा वर्ग केवल संयुक्त और अविभाज्य जनतंत्र के रूप का ही इस्तेमाल कर सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका के विशाल क्षेत्र में संघीय जनतंत्र कुल मिलाकर, अब भी आवश्यक है, यद्यपि पूर्वी राज्यों में अब वह एक बाधा बनने लगा है। इंगलैंड में, जिसके दो द्वीपों पर चार जातियों के लोग रहते हैं और जहां पर एक ही संसद होने के बावजूद आज भी क़ानून बनाने की तीन व्यवस्थाएं साथ-साथ चल रही हैं, वह आगे ले जानेवाला क़दम होगा। छोटे-से स्विट्ज़रलैंड में वह बहुत दिनों से एक बाधा बना हुआ है, उसे सहा गया है तो सिर्फ़ इसलिए कि यूरोप की राज्य-व्यवस्था में स्विट्ज़रलैंड केवल एक निष्क्रिय सदस्य की हैसियत से ही सन्तुष्ट है। जर्मनी के लिए स्विट्ज़रलैंड की तरह का संघ पीछे ढकेलनेवाला क़दम होगा। संघीय राज्य का पूर्णतः एकीकृत राज्य से दो बातों में भेद है: पहली यह कि संघ की प्रत्येक राज्य, प्रत्येक प्रदेश की अपनी जुदा दीवानी और फ़ौजदारी क़ानूनसाज़ी और अदालती व्यवस्था होती है, और दूसरी यह कि एक लोकसभा के साथ ही साथ उसके संसद की एक राज्य-सभा भी होती है, जिसके अन्दर प्रत्येक छोटा-बड़ा प्रदेश, प्रदेश के रूप में वोट देता है।" जर्मनी में संघीय राज्य पूर्णतः एकीकृत राज्य की स्थापना के मार्ग में एक संक्रमणकालीन मंजिल है, और वहां पर, १८६६ और १८७० की "ऊपर से होनेवाली क्रान्ति" की प्रगति को उलटना नहीं चाहिए, बल्कि उसकी मदद के लिए "नीचे से आन्दोलन" खड़ा करना चाहिए।

राज्य के रूपों के सम्बंध में एंगेल्स ने उदासीनता नहीं दिखाई। इसके विपरीत, उन्होंने तमाम संक्रमणकालीन रूपों का अत्यधिक सावधानी से विश्लेषण करने का प्रयत्न किया, ताकि प्रत्येक स्थिति की ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर यह निर्णय कर सकें कि वह संक्रमणकालीन रूप किस चीज़ से किस चीज़ की ओर प्रगति कर रहा है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वहारा वर्ग और सर्वहारा क्रान्ति की दृष्टि से, मार्क्स की तरह एंगेल्स भी, जनवादी केन्द्रीयता पर, एकीकृत और अविभाज्य जनतंत्र पर ज़ोर देते थे। संघीय जनतंत्र को या तो वह अपवाद और विकास के मार्ग में बाधा समझते थे, या राजतंत्र से केंद्रीकृत जनतंत्र की ओर विकास के मार्ग में संक्रमणकालीन रूप, कुछ विशेष परिस्थितियों में "आगे की ओर क़दम" मानते थे। और उन विशेष परिस्थितियों में वह राष्ट्रीय प्रश्न को पहले रखते थे।

छोटे-छोटे राज्यों की प्रतिक्रियावादी प्रकृति और कुछ ठोस परिस्थितियों में राष्ट्रीय प्रश्न द्वारा उसे छिपाने की प्रवृत्ति की निर्मम आलोचना करते हुए, मार्क्स की तरह ही एंगेल्स ने भी राष्ट्रीय प्रश्न से कतराने की कभी लेश मात्र इच्छा भी नहीं दिखायी, जैसी हालैंड और पोलैंड के वे मार्क्सवादी अक्सर दिखाते हैं और जो उनके अपने छोटे-छोटे राज्यों की संकीर्ण कूपमंडूक राष्ट्रीयतावाद के ख़िलाफ़ उनके सर्वथा उचित विरोध का नतीजा होती है।

इंगलैंड के सम्बंध में भी, जहां लगता है कि भौगोलिक परिस्थितियों, एक भाषा और कई शताब्दियों के इतिहास ने उसके विभिन्न छोटे भागों में राष्ट्रीय प्रश्न को "ख़त्म कर दिया" होगा – उस देश के बारे में भी, एंगेल्स ने इस स्पष्ट बात का उल्लेख किया कि वहां पर राष्ट्रीय समस्या अभी तक हल नहीं हुई है और इसलिए, उन्होंने कहा कि, वहां पर संघीय जनतंत्र की स्थापना "आगे की ओर क़दम" होगी। साफ़ है कि यहां पर संघीय जनतंत्र की कमियों की आलोचना छोड़ देने या एक एकताबद्ध और केंद्रीकृत जनवादी जनतंत्र के पक्ष में अपने अत्यंत शक्तिशाली प्रचार और संघर्ष को ढीला करने की कोशिश का कहीं नाम-निशान तक नहीं है।

लेकिन जनवादी केन्द्रीयता के माने एंगेल्स ने उस नौकरशाही अर्थ में नहीं लगाये, जिसमें पूंजीवादी और निम्नपूंजीवादी विचारधारा-निरूपक और अराजकतावादी भी इस शब्द का इस्तेमाल करते हैं। एक ऐसा व्यापक स्थानीय स्वशासन केन्द्रीयता के उनके विचार के बाहर नहीं था, जो तमाम नौकरशाही और ऊपर से "हुक्म चलाने की" प्रथा को पूर्णतया ख़त्म करने के साथ साथ "कम्यूनों" और ज़िलों के द्वारा राज्य की एकता की स्वेच्छा से रक्षा भी करे। राज्य के मार्क्सवादी कार्यक्रम-संबंधी विचारों को और विस्तार से बताते हुए एंगेल्स ने लिखा था :

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"...तो फिर, एकीकृत जनतंत्र—लेकिन वर्तमान फ़्रांसीसी जनतंत्र के अर्थ में नहीं, जो १७९८ में स्थापित सम्राट विहीन साम्राज्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। १७९२ से १७९८ तक फ़्रांस के प्रत्येक प्रशासनिक ज़िले ने, प्रत्येक कम्यून (Gemeinde) ने अमरीकी ढंग के सम्पूर्ण स्वशासन का उपभोग किया था, और यही हमें भी चाहिए। स्वशासन का संगठन किस तरह करना है और नौकरशाही के विना हम किस प्रकार अपना काम चला सकते हैं, यह अमरीका और प्रथम फ़्रांसीसी जनतंत्र ने दिखला दिया है, और कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा इंगलैंड के दूसरे उपनिवेशों द्वारा आज भी दिखलाया जा रहा है। और इस तरह का प्रान्तीय और स्थानीय स्वशासन स्विस संघशासन से कहीं अधिक स्वतंत्र है। यह सही है कि उसके अन्तर्गत बुन्द" (यानी सम्पूर्ण संघीय राज्य) "के साथ अपने सम्बंध में प्रत्येक प्रदेश बहुत स्वतंत्र होता है, लेकिन साथ ही साथ वह ज़िले और कम्यून के साथ अपने सम्बंध में भी स्वतंत्र होता है। प्रदेशों की सरकारें ज़िलों के गवर्नरों (Bezirksstatthalter) और प्रीफ़ेक्टों की नियुक्ति करती हैं—यह एक ऐसी प्रथा है जो अंग्रेज़ी बोलनेवाले देशों में अज्ञात है, और जिसे भविष्य में हमें अपने यहां भी प्रशा के लैंड्राटों और रैजीरुंग्स्राटों" (कमीश्नरों, ज़िलों के पुलिस अफ़सरों, गवर्नरों और आम तौर से ऊपर से नियुक्त किये जानेवाले तमाम अफ़सरों) "की तरह ही निश्चयात्मक ढंग से ख़त्म करना होगा।" इसलिए, एंगेल्स का सुझाव है कि कार्यक्रम में स्वशासन सम्बंधी धारा इन शब्दों में लिखी जाये: "प्रान्तों के लिए" (गुबेर्नियाओं तथा प्रदेशों के लिए) "ज़िलों और कम्यूनों के लिए सार्विक मताधिकार के आधार पर चुने हुए अधिकारियों द्वारा पूर्ण स्वशासन। राज्य द्वारा नियुक्त किये गये तमाम स्थानीय और प्रान्तीय अधिकारियों का अन्त।"

मैं पहले भी 'प्राव्दा'[32] में—(२८ मई, १९१७ के अंक ६८ में) जिसे केरेन्स्की और दूसरे "समाजवादी" मंत्रियों की सरकार ने बंद कर दिया था—बता चुका हूं कि इस संबंध में (और निस्सन्देह किसी भी तरह

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल इसी संबंध में नहीं) मिथ्या-क्रान्तिकारी मिथ्या-जनवाद के हमारे मिथ्या-समाजवादी प्रतिनिधि बहुत ही घृणित रूप से जनवादिता से पथभ्रष्ट हुए हैं। स्वाभाविक ही है कि उन लोगों ने, जिन्होंने "गठबंधन" के जरिये अपने को साम्राज्यवादी पूंजीपति-वर्ग के साथ बांध लिया है, इस आलोचना को अनसुना कर दिया है।

इस चीज़ को ध्यान में रखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि एंगेल्स, सच्ची घटनाओं को लेकर, एक निश्चित उदाहरण के आधार पर, लोगों के अन्दर, ख़ास तौर से निम्नपूंजीवादी जनवादियों के अन्दर, फैले हुए इस पूर्वाग्रह को ग़लत साबित करते हैं कि केंद्रीकृत जनतंत्र की अपेक्षा संघीय जनतंत्र में आवश्यक रूप से अधिक स्वतंत्रता होती है। यह बात सही नहीं है। १७९२–१७९८ के केंद्रीकृत फ़्रांसीसी जनतंत्र और स्विस संघीय जनतंत्र के सम्बन्ध में एंगेल्स द्वारा उपस्थित की गयी बातों से वह ग़लत साबित हो जाती है। वस्तुतः जनवादी केंद्रीकृत जनतंत्र ने संघीय जनतंत्र की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता दी थी। दूसरे शब्दों में, इतिहास में सबसे अधिक स्थानीय, प्रान्तीय तथा अन्य प्रकार की स्वतंत्रता संघीय जनतंत्र ने नहीं, बल्कि केंद्रीकृत जनतंत्र ने दी।

हमारी पार्टी के प्रचार और आन्दोलन के कार्य में इस चीज़ की ओर और वस्तुतः संघीय और केंद्रीकृत जनतंत्र और स्थानीय स्वशासन की पूरी समस्या की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

५. मार्क्स की पुस्तक 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' के लिए १८९१ में लिखी गयी भूमिका

'फ़्रांस में गृहयुद्ध' के तीसरे संस्करण के लिए लिखित अपनी भूमिका में (इस भूमिका पर १८ मार्च १८९१ की तारीख़ है और वह सबसे पहले *«Neue Zeit»* में छपी थी), एंगेल्स ने राज्य के प्रति रवैये से सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में प्रासंगिक ढंग से कही गई कई दूसरी दिलचस्प बातों के साथ साथ, उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ कम्यून के सबक़ों का सार दिया है।[33] इस सार को, जिसे कम्यून और लेखक के बीच बीस वर्षों के अनुभव ने और भी गहन बना दिया है, और जिसे जर्मनी में अत्यधिक प्रचलित

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"राज्य में अंधविश्वास" के ख़िलाफ़ ख़ास तौर से लिखा गया था, हम पूर्ण अधिकार के साथ विचाराधीन प्रश्न के सम्बन्ध में मार्क्सवाद का अन्तिम शब्द कह सकते हैं।

> एंगेल्स कहते हैं कि फ़्रांस में हर क्रांति के बाद मज़दूर हथियारबंद हो जाते थे; "इसलिए राज्य के पूंजीवादी नायकों के लिए पहला कर्त्तव्य यह था, कि मज़दूरों के हथियार छीन लो। यही कारण था कि मज़दूरों द्वारा जीती गयी हर क्रान्ति के बाद उन्हें एक नयी लड़ाई छेड़ना पड़ती थी, जिसका अन्त उनकी हार में होता था..."

पूंजीवादी क्रान्तियों के अनुभव का यह सार जितना संक्षिप्त है उतना ही अर्थपूर्ण भी है। मसले के लुब्बे-लुबाब को—अन्य बातों के साथ ही राज्य के प्रश्न पर भी (**क्या उत्पीड़ित वर्ग के हाथ में हथियार हैं?**)—यहां पर बहुत ही उल्लेखनीय ढंग से ग्रहण किया गया है। पूंजीवादी विचारधारा से प्रभावित प्रोफ़ेसरों और साथ ही निम्नपूंजीवादी जनवादियों द्वारा समस्या के ठीक इसी लुब्बे-लुबाब की सबसे अधिक अवहेलना की जाती है। १६१७ की रूसी क्रांति के समय, पूंजीवादी क्रांति के इस भेद को खोल देने का सम्मान (कैवेन्याक जैसा सम्मान) "मेन्शेविक", "मार्क्सवादी-भी", त्सेरेतेली को प्राप्त हुआ था। ११ जून के अपने "ऐतिहासिक" भाषण में त्सेरेतेली के मुंह से पेत्रोग्राद के मज़दूरों को निःशस्त्र करने के बारे में पूंजीपति-वर्ग के निश्चय की बात निकल गयी थी—निस्सन्देह उन्होंने उसका ज़िक्र अपने ही निर्णय के रूप में, और सामान्यतः "राज्य की" आवश्यकता के रूप में किया था! [34]

त्सेरेतेली का ११ जून का ऐतिहासिक भाषण, निस्सन्देह, १६१७ की क्रान्ति के प्रत्येक इतिहासकार के लिए इस बात के एक बहुत ही जीते-जागते उदाहरण का काम देगा कि त्सेरेतेली के नेतृत्व में समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों का गुट किस प्रकार ग़द्दारी करके क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के **विरुद्ध** पूंजीपति-वर्ग से जा मिला था।

एंगेल्स का दूसरा प्रासंगिक कथन, जो भी राज्य के प्रश्न से ही संबंधित है, धर्म के बारे में है। यह बात भली भांति विदित है कि ज्यों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्यों जर्मन सामाजिक-जनवाद का पतन होता गया और वह ज्यादा से ज्यादा अवसरवादी होता गया, त्यों त्यों उसने इस प्रसिद्ध सूत्र के अर्थ का कूपमंडूक ढंग से, ज्यादा से ज्यादा अवसरों पर अनर्थ करना शुरू कर दिया: "धर्म को एक निजी मामला घोषित कर दिया जाये"। यानी, इस सूत्र को तोड़-मरोड़कर यह मतलब निकाला गया कि क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की **पार्टी के लिए भी** धर्म एक निजी मामला है!! एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्यक्रम के साथ इसी घोर ग़द्दारी का विरोध किया था। १८९१ में उन्होंने अपनी पार्टी के अन्दर अवसरवाद के बहुत ही कमज़ोर अंकुर देखे थे, और इसलिए बहुत ही सतर्कता से कहा था:

> "चूंकि कम्यून में प्रायः केवल मज़दूर या मज़दूरों के माने हुए प्रतिनिधि ही बैठते थे, इसलिए उसके फ़ैसलों का भी निश्चय ही एक सर्वहारा चरित्र था। या तो उन्होंने ऐसे सुधारों की आज्ञप्ति जारी की, जिन्हें जनतांत्रिक पूंजीपति केवल अपनी नीच कायरता के कारण नहीं जारी कर सके थे, लेकिन जिनसे मज़दूर-वर्ग की स्वतंत्र सरगर्मी के लिए ज़रूरी आधार मिलता था—जैसे कि इस सिद्धान्त को अमली रूप देना कि **राज्य के सम्बंध में** धर्म केवल एक निजी मामला है, अथवा कम्यून ने ऐसे आदेश जारी किये थे जो सीधे सीधे मज़दूर-वर्ग के हित में थे और कुछ हद तक समाज की पुरानी व्यवस्था को गहरी चोट पहुंचाते थे..."

"राज्य के सम्बंध में"—इन शब्दों पर एंगेल्स ने, जर्मनी के अवसरवादियों पर सीधी चोट के रूप में, जान-बूझकर ज़ोर दिया था, जिन्होंने घोषणा कर दी थी कि **पार्टी के सम्बन्ध में** धर्म एक निजी मामला है और इस तरह से क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की पार्टी को अत्यंत निकृष्ट "स्वतंत्र चिन्तक" कूपमंडूकता के स्तर पर गिरा दिया था, जो धर्म-निरपेक्षता को मानने के लिए तो तैयार है, लेकिन जनता को मतिमन्द बनानेवाली धर्म की अफ़ीम के ख़िलाफ़ **पार्टी के** संघर्ष का परित्याग कर देती है।

१९१४ में पार्टी के लज्जाजनक दिवालियेपन के बुनियादी कारणों का पता लगाते समय जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के भावी इतिहासकार

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को इस सवाल के बारे में उस पार्टी के सैद्धान्तिक नेता काउत्स्की के लेखों के गोल-मोल ऐलानों से लेकर, जो अवसरवाद के लिए पूरा द्वार खोल देते हैं, १९१३ में «Los-von-Kirche-Bewegung» ("चर्च से अलग होने" के आन्दोलन)[35] की ओर पार्टी के रवैये तक में बहुत-सी रोचक सामग्री मिल जायेगी।

लेकिन हमें देखना चाहिए कि कम्यून के बीस वर्ष बाद जुझारू सर्वहारा वर्ग के लिए एंगेल्स ने उससे क्या सबक़ निकाले थे।

जिन सबक़ों को एंगेल्स ने सबसे अधिक महत्त्व दिया था, वे ये हैं:

> "...पहले की केंद्रीकृत सरकार की दमनकारी सत्ता का ही – फ़ौज, राजनैतिक पुलिस और नौकरशाही, जिसका नेपोलियन ने १७९८ में निर्माण किया था और जिसके बाद से प्रत्येक नयी सरकार ने मनपसन्द हथियार के रूप में उसे अपनाया था और उसे अपने विरोधियों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया था – ठीक इसी सत्ता का हर जगह पतन होना चाहिए था, जैसे पेरिस में उसका पतन हुआ था।
>
> "शुरू से ही कम्यून को यह मान लेना चाहिए था कि सत्ता पर अधिकार कर लेने के बाद मज़दूर-वर्ग राज्य की पुरानी मशीनरी से आगे काम नहीं चला सकता; कि अभी-अभी स्थापित अपने आधिपत्य को मज़दूर-वर्ग फिर न खो दे, इसके लिए ज़रूरी है कि वह एक तरफ़ तो दमन की उस सारी पुरानी मशीनरी का अन्त कर दे, जो पहले ख़ुद उसके ख़िलाफ़ इस्तेमाल की जाती थी और दूसरी तरफ़, ख़ुद अपने प्रतिनिधियों और अधिकारियों से अपने को सुरक्षित रखने के लिए यह ऐलान कर दे कि वे सब, बिना किसी अपवाद के, किसी भी क्षण अपने पद से हटाये जा सकते हैं..."

एंगेल्स इस बात पर बार-बार ज़ोर देते हैं कि न केवल राजतंत्र के अन्दर, बल्कि **जनवादी जनतंत्र के अन्दर भी**, राज्य राज्य ही रहता है, अर्थात् अपने अफ़सरों को, "समाज के सेवकों" को, अपने निकायों को,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाज का स्वामी बना देने की उसकी बुनियादी विशेषता क़ायम रहती है।

"... राज्य और राज्य के विभिन्न निकायों के समाज-सेवकों से बदलकर समाज-स्वामी बन जाना, पहले के सभी राज्यों में अवश्यम्भावी था, जिसके ख़िलाफ़ कम्यून ने दो अचूक उपायों से काम लिया। पहला यह कि उसने सरकारी, अदालती और शिक्षा-सम्बंधी सभी पदों पर नियुक्तियां सार्विक मताधिकार के आधार पर सभी सम्बन्धित लोगों द्वारा इस शर्त के साथ चुनाव करवाकर कीं कि उन्हें चुनाव करनेवाले किसी भी समय हटवा सकें। और दूसरा यह कि बड़े और छोटे – सभी अधिकारियों को दूसरे मज़दूरों की मज़दूरी के बराबर ही तनख़ा दी गयी। कम्यून ने जो सबसे ज़्यादा तनख़ा दी, वह ६,००० फ़्रैंक थी। इस तरह ओहदों के लिए छीना-झपटी और पदलोलुपता के ख़िलाफ़ एक कारगर रुकावट खड़ी कर दी गयी, जो प्रतिनिधि संस्थाओं के नुमाइन्दों को दिये गये उन लाज़िमी आदेशों के अलावा थी और अलग से जोड़ दी गयी थी..."

यहां एंगेल्स उस रोचक सीमारेखा पर पहुंच जाते हैं, जहां पहुंचकर सुसंगत जनवाद एक तरफ़ तो समाजवाद में बदल जाता है, और दूसरी तरफ़ समाजवाद की मांग करता है, क्योंकि राज्य को ख़त्म करने के लिए यह ज़रूरी है कि राज्यसेवा के कामों को नियंत्रण और हिसाब-किताब के ऐसे सरल कामों में बदल दिया जाये कि उन्हें आबादी का बहुत बड़ा भाग, और अन्त में, उसका प्रत्येक व्यक्ति कर सके। और पदलोलुपता को पूर्ण रूप से ख़त्म करने के लिए यह ज़रूरी है कि इस बात को असंभव बना दिया जाये कि कोई सार्वजनिक सेवा के "सम्मानित" पदों का

---

* उस समय लगभग २,४०० रूबल, वर्तमान विनिमय दर के हिसाब से लगभग ६,००० रूबल। जो बोल्शेविक कहते हैं कि नगरपालिकाओं के सदस्यों की तनख़ा राज्य भर में अधिक से अधिक ६,००० रूबलों की जगह – जो बिलकुल पर्याप्त हैं – ९,००० रूबल कर दी जाये, वे एक अक्षम्य काम कर रहे हैं।[36]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस्तेमाल, चाहे वे लाभ-रहित ही क्यों न हों, बैंकों और ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों में ऊंचे लाभवाले ओहदों पर पहुंचने के लिए कर सकें, जैसा कि सभी स्वतंत्रतम पूंजीवादी देशों में बराबर होता रहता है।

लेकिन एंगेल्स ने वह ग़लती नहीं की जो कुछ मार्क्सवादी, उदाहरण के लिए, राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में विचार करते समय करते हैं और यह तर्क पेश करते हैं कि पूंजीवाद के अन्तर्गत यह असंभव है और समाजवाद में वह ग़ैर-ज़रूरी हो जायेगा। यह चतुरतापूर्ण लगनेवाला, किन्तु वास्तव में ग़लत तर्क किसी भी जनवादी संस्था के सम्बंध में, जिसमें अधिकारियों का परिमित वेतन भी शामिल है, दिया जा सकता है; क्योंकि पूंजीवाद के अन्तर्गत पूर्ण रूप से सुसंगत जनवाद असंभव है, और समाजवाद में तमाम जनवाद विलुप्त हो जाता है।

यह ऐसा कुतर्क है जो इस पुराने मज़ाक़ से मिलता-जुलता है कि अगर आदमी के सिर का एक बाल और कम हो जाये तो क्या वह आदमी गंजा हो जायेगा?

जनवाद का अन्त तक विकास करना, इस विकास के रूपों को ढूंढ़ना, व्यवहार की कसौटी पर उनकी परीक्षा करना, आदि—यह सब कुछ सामाजिक क्रान्ति के लिए किये जानेवाले संघर्ष से सम्बंधित कामों में ही शामिल है। अलग से लिया जाये, तो किसी तरह का जनवाद समाजवाद नहीं लायेगा। लेकिन वास्तविक जीवन में जनवाद को कभी "अलग से" नहीं "लिया जाएगा", उसे दूसरी चीज़ों "के साथ लिया जायेगा", वह आर्थिक व्यवस्था पर भी अपना प्रभाव डालेगा, उसके रूपान्तर की क्रिया को प्रेरणा प्रदान करेगा; फिर स्वयं भी उस आर्थिक विकास से प्रभावित होगा, और यह क्रम इसी तरह जारी रहेगा। यही जीवित इतिहास का द्वन्द्व है।

> एंगेल्स आगे कहते हैं: "...पुरानी राज्यसत्ता के इस ध्वंस (Sprengung) और उसकी जगह नयी और वास्तविक रूप से जनवादी राज्यसत्ता की स्थापना का 'गृहयुद्ध' के तीसरे भाग में बहुत ब्योरे से वर्णन किया गया है। लेकिन यहां पर उसकी कुछ विशेषताओं के बारे में संक्षेप में एक बार फिर से विचार करना

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवश्यक था, क्योंकि जर्मनी में ख़ास तौर से राज्य के सम्बंध में अंधविश्वास की भावना दर्शन के क्षेत्र से आगे बढ़कर पूंजीपति-वर्ग की, और यहां तक कि बहुत-से मज़दूरों की भी, साधारण चेतना में फैल गयी है। दार्शनिक अवधारणा के अनुसार राज्य "विचार की सिद्धि" है, या दार्शनिक शब्दों में कहा जाये तो पृथ्वी पर भगवान का राज्य है, एक ऐसा क्षेत्र है जिसके अन्दर शाश्वत सत्य और न्याय की सिद्धि होती है या होना चाहिए। और इसी से राज्य और उससे सम्बंधित प्रत्येक वस्तु के प्रति लोगों के अन्दर एक अंधविश्वासी श्रद्धा पैदा हो जाती है, और चूंकि लोग अपने बाल्यकाल से ही यह सोचने के आदी होते हैं कि पूरे समाज के कामकाज और हितों की देखभाल करने का, जिस तरह से वह पहले से होता आया है—अर्थात् राज्य और उसके उच्च पदस्थ अफ़सरों के ज़रिये—उसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है, इसलिए यह भावना और भी आसानी से उनके मन में घर कर लेती है। लोग समझते हैं कि वंशानुगत राजतंत्र में अपने विश्वास का परित्याग करके और जनवादी जनतंत्र के पक्षधर बनकर उन्होंने आगे की दिशा में असाधारण रूप से साहसिक क़दम उठाया है। लेकिन, वास्तव में, राज्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न की मशीनरी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जनवादी जनतंत्र में भी यह बात उतनी ही सच है जितनी राजतंत्र में। राज्य के पक्ष में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वह एक ऐसी बुराई है, जो विजयी सर्वहारा को उसके वर्ग-आधिपत्य के विजयी संघर्ष के बाद विरासत में मिली है और जिसके बुरे पहलुओं को कम्यून की तरह ही अविलम्ब काटकर फेंक देने के काम से विजयी सर्वहारा उस समय तक नहीं बच सकता, जब तक एक नयी पीढ़ी नयी और स्वतंत्र सामाजिक परिस्थितियों में पलकर बड़ी न हो जाये जो राज्य की सम्पूर्ण कबाड़ को उठाकर फेंक दे।"

एंगेल्स ने जर्मनों को चेतावनी दी थी कि वे राजतंत्र की जगह जनतंत्र की स्थापना के सिलसिले में राज्य के पूरे प्रश्न पर समाजवाद की

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुनियादी बातों को न भूलें। आज उनकी चेतावनियों को पढ़ने से मालूम होता है कि वे मानो त्सेरेतेली और चेर्नोव जैसे श्रीमानों के लिए, जिन्होंने अपने "गठबंधन" के व्यवहार से राज्य में अंधविश्वास और उसके प्रति अंधविश्वासी श्रद्धा प्रदर्शित की है, वस्तुतः सबक़ हों! *

दो बातें और: १) जब एंगेल्स ने कहा था कि राज्य "एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न की मशीनरी" बना रहता है और जनवादी जनतंत्र में भी "यह बात उतनी ही सच है" जितनी राजतंत्र में, तो इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि उत्पीड़न के रूप का सवाल सर्वहारा वर्ग के लिए उपेक्षा की चीज़ है, जैसा कि कुछ अराजकतावादी "सिखाते हैं"। वर्ग-संघर्ष और वर्ग-उत्पीड़न का अधिक विस्तीर्ण, अधिक स्वतंत्र और अधिक खुला हुआ रूप तमाम वर्गों को ख़त्म करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की अत्यधिक सहायता करता है।

२) राज्य की सम्पूर्ण कबाड़ को उठाकर केवल एक नयी पीढ़ी ही क्यों फेंक सकेगी? यह प्रश्न जनवाद को ख़त्म करने के प्रश्न से सम्बंधित है, जिसपर हम अब विचार करेंगे।

६. जनवाद को ख़त्म करने के प्रश्न पर एंगेल्स के विचार

"सामाजिक-जनवादी" शब्द वैज्ञानिक रूप से ग़लत है–इस प्रश्न के प्रसंग में एंगेल्स को इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने का मौक़ा मिला था।

आठवें दशक में विविध विषयों पर, मुख्यतया "अंतर्राष्ट्रीय" विषयों पर («*Internationales aus dem «Volksstaat»*»)* लिखे गये अपने लेखों के एक संस्करण की ३ जनवरी १८९४ की, यानी अपनी मृत्यु से डेढ़ वर्ष पहले लिखी गयी, भूमिका में एंगेल्स ने लिखा था कि मैंने अपने तमाम लेखों में "सामाजिक-जनवादी" नहीं, बल्कि "कम्युनिस्ट" शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि उस समय फ़्रांस के प्रूदोंवादी और जर्मनी के लासालवादी अपने को सामाजिक-जनवादी कहते थे।[37]

---

* "जनता का राज्य' में से अंतर्राष्ट्रीय विषय'। –सं०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगे चलकर एंगेल्स लिखते हैं कि "...इसलिए, मार्क्स के लिए और मेरे लिए अपने विशेष दृष्टिकोण को बताने के लिए ऐसे ढीले-ढाले शब्द का प्रयोग करना बिलकुल असंभव था। आज हालत दूसरी है और शायद वह शब्द ("सामाजिक-जनवादी") चल सकता है (mag passieren) चाहे एक ऐसी पार्टी के लिए जिसका आर्थिक कार्यक्रम न केवल आम तौर से समाजवादी, बल्कि सीधे-सीधे कम्युनिस्ट है, और जिसका अन्तिम राजनैतिक लक्ष्य पूरे राज्य का, और इसलिए, जनवाद का भी, ख़त्म करना है, वह अब भी असटीक (unpassend – नामुनासिब) है लेकिन **वास्तविक** (शब्द पर ज़ोर एंगेल्स का है) राजनैतिक पार्टियों के नाम कभी पूर्ण रूप से उपयुक्त नहीं होते; पार्टी विकास करती है, लेकिन नाम ज्यों का त्यों बना रहता है।"

द्वन्द्ववादी एंगेल्स अपने अन्तिम दिनों तक द्वन्द्ववाद के प्रति सच्चे रहे। मार्क्स ने और मैंने, वह कहते हैं, पार्टी के लिए एक बहुत बढ़िया और वैज्ञानिक रूप से सटीक नाम ढूंढ़ निकाला था, लेकिन तब कोई वास्तविक पार्टी, अर्थात् सर्वहारा वर्ग की जन-व्यापी पार्टी नहीं थी। अब, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में, एक वास्तविक पार्टी है, लेकिन वैज्ञानिक रूप से उसका नाम ग़लत है। कोई बात नहीं यदि पार्टी **विकास करती है**, यदि उसके नाम की वैज्ञानिक असटीकता उससे छिपी नहीं है और सही दिशा में उसके विकास के मार्ग में बाधक नहीं है, तो वह "चल जायेगा"!

संभव है कि कोई मसख़रा हम बोल्शेविकों को भी एंगेल्स के ढंग पर सांत्वना देने लगे: हमारी एक सच्ची पार्टी है, वह बहुत बढ़िया ढंग से विकास कर रही है, उसके लिए "बोल्शेविक" जैसा अर्थहीन और भद्दा नाम भी "चल जायेगा", यद्यपि उससे सिवा इस बिलकुल आकस्मिक बात के और कोई मतलब नहीं निकलता कि १९०३ की ब्रसेल्स-लन्दन कांग्रेस में हम लोगों का बहुमत * था[38]... शायद अब, जब जनतंत्रवादियों

---

* रूसी में बहुमत के लिए "बोल्शिंस्त्वो" शब्द है, इसी लिए "बोल्शेविक" नाम पड़ा। – सं०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रौर "क्रान्तिकारी" कूपमंडूक जनवादियों ने जुलाई ग्रौर ग्रगस्त में हमारी पार्टी का सम्पीड़न करके "बोल्शेविक" शब्द को सर्वत्र इतना ग्रादरणीय वना दिया है, ग्रौर, इसके ग्रतिरिक्त, जब यह सम्पीड़न उस महान ऐतिहासिक प्रगति का सूचक वन गया है जो हमारी पार्टी ने ग्रपने वास्तविक विकास के दौर में की है, शायद ग्रव मैं भी पार्टी का नाम वदलने के संबंध में ग्रप्रैल में दिये गये ग्रपने सुझाव पर ज़ोर देने में हिचकिचाऊं। शायद साथियों के सामने ग्रव मैं एक "समझौते" का मार्ग रखूंगा, ग्रर्थात् यह कि हम ग्रपने को कम्युनिस्ट पार्टी कहें, लेकिन "वोल्शेविक" शब्द भी कोष्ठकों में रहने दें...

लेकिन पार्टी के नाम का प्रश्न राज्य के सम्बंध में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के रवैये के प्रश्न की तुलना में वहुत ही कम महत्त्व रखता है।

राज्य के संबंध में ग्राम तौर से दिये जानेवाले तर्कों में वराबर वही ग़लती की जाती है, जिसके ख़िलाफ़ एंगेल्स ने चेतावनी दी थी ग्रौर जिसकी ग्रोर, चलते चलते, हमने भी ऊपर इशारा किया है, यानी यह कि इस वात को निरन्तर भूला दिया जाता है कि राज्य के ग्रंत का मतलव जनवाद का भी ग्रंत है; कि राज्य के धीरे-धीरे विलोप का ग्रर्थ जनवाद का भी धीरे-धीरे विलोप है।

पहली नज़र में यह दावा वहुत ही विचित्र ग्रौर ग्रबोधगम्य लगता है। यहां तक कि किसी को यह डर भी हो सकता है कि हम समाज में ऐसी व्यवस्था के ग्राने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जिसमें वहुमत के ग्रागे ग्रल्पमत की मातहती के उसूल को नहीं माना जायेगा—क्योंकि इस उसूल को मानने का ही नाम जनवाद है।

नहीं, जनवाद ग्रौर वहुमत के ग्रागे ग्रल्पमत की मातहती एक ही चीज़ नहीं है। जनवाद एक राज्य है जो वहुमत के ग्रागे ग्रल्पमत की मातहती को मानता है, यानी वह एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के ख़िलाफ़, ग्रावादी के एक भाग द्वारा दूसरे भाग के ख़िलाफ़, व्यवस्थित बलप्रयोग के लिए एक संगठन है।

हमने ग्रपना ग्रन्तिम लक्ष्य राज्य का, ग्रर्थात् हर प्रकार के संगठित ग्रौर व्यवस्थित वलप्रयोग का, लोगों पर ग्राम तौर से हर प्रकार की ज़बर्दस्ती का, उन्मूलन निर्धारित किया है। हम ऐसी समाज-व्यवस्था के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्राने की प्रतीक्षा नहीं करते, जिसमें वहुमत के ग्रागे ग्रल्पमत की मातहती के उसूल का पालन नहीं होगा। लेकिन समाजवाद की स्थापना के लिए कोशिश करते हुए हमें पूरा विश्वास है कि वह कम्युनिज़्म में विकसित हो जायेगा; ग्रौर, इसलिए लोगों के ख़िलाफ़ किसी प्रकार की ज़वर्दस्ती का इस्तेमाल करने की ज़रूरत, एक मनुष्य के ग्रागे दूसरे मनुष्य की ग्रौर, ग्रावादी के एक भाग के ग्रागे दूसरे भाग की ग्राधीनता की ज़रूरत भी, मिट जायेगी, क्योंकि तब लोग बिना किसी ज़र्बदस्ती के, बिना किसी ज़ोर-दबाव के सामाजिक जीवन की बुनियादी शर्तों को मानने के ग्रादी हो जायेंगे।

ग्रादत के इस तत्त्व पर ज़ोर देने के लिए ही एंगेल्स "नयी ग्रौर स्वतंत्र सामाजिक परिस्थितियों में पली" एक नयी पीढ़ी की बात करते हैं, जो "राज्य की सम्पूर्ण कवाड़ को"–हर प्रकार के राज्य को जिसमें जनवादी-जनतांत्रिक राज्य भी शामिल है–"उठाकर फेंक दे सकेगी"।

इसका ग्रर्थ स्पष्ट करने के लिए राज्य के धीरे-धीरे विलोप के ग्रार्थिक ग्राधार की जांच करना ग्रावश्यक है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय ५

राज्य के धीरे-धीरे विलोप के आर्थिक आधार

इस प्रश्न की सबसे पूर्ण व्याख्या मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' में की है (ब्राके के नाम ५ मई, १८७५ का पत्र, जो १८९१ में पहली बार «*Neue Zeit*», IX, १, में छपा था और जो एक विशेष रूसी संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ है)। इस अनूठी कृति के खंडनात्मक भाग ने—जिसमें लासालवाद की आलोचना है—एक तरह से, उसके मंडनात्मक भाग को, यानी कम्युनिज़्म के विकास और राज्य के धीरे-धीरे विलोप के पारस्परिक सम्बंध के विश्लेषण को, दबा दिया है।

१. मार्क्स ने प्रश्न को किस तरह पेश किया था

ब्राके के नाम ५ मई, १८७५, को लिखे गये मार्क्स के पत्र की तुलना यदि कोई बिलकुल ऊपरी दृष्टि से बेबेल के नाम २८ मार्च, १८७५, को लिखे गये एंगेल्स के उस पत्र से करे, जिसपर हम ऊपर विचार कर चुके हैं, तो उसे लग सकता है कि मार्क्स एंगेल्स की अपेक्षा कहीं अधिक "राज्य के पक्ष में" थे, और राज्य के प्रश्न पर मार्क्स और एंगेल्स के विचारों में बहुत काफ़ी फ़र्क़ था।

एंगेल्स ने बेबेल को सुझाया था कि राज्य के संबंध में तमाम बकवास को बिलकुल ख़त्म कर दिया जाये, कार्यक्रम में से राज्य शब्द को बिलकुल निकाल दिया जाये और उसके स्थान पर "समुदाय" शब्द का प्रयोग किया जाये। एंगेल्स ने यहां तक कह दिया था कि शब्द के असली अर्थ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में कम्यून राज्य नहीं रह गया था। लेकिन मार्क्स ने फिर भी "कम्युनिस्ट समाज के भावी राज्य" की वात कही थी, यानी गोया कि कम्युनिस्ट समाज में भी वह एक राज्य की ग्रावश्यकता मानते हों।

लेकिन इस तरह का विचार बुनियादी तौर से ग़लत होगा। नज़दीक से देखा जाये तो मालूम होगा कि राज्य ग्रौर उसके धीरे-धीरे विलोप के सम्बंध में मार्क्स ग्रौर एंगेल्स के विचारों में पूर्ण साम्य था, ग्रौर मार्क्स के ऊपर उद्धृत वाक्य में केलव **धीरे-धीरे विलुप्त होते** राज्य की ही वात कही गयी है।

स्पष्ट है कि भविष्य में ठीक किस क्षण राज्य "विलुप्त हो जायेगा", यह वताने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता—इसलिए ग्रौर भी कि यह प्रक्रिया स्पष्ट ही वहुत लम्बी होगी। मार्क्स ग्रौर एंगेल्स के विचारों में जो ऊपरी ग्रन्तर दिखलायी देता है, उसका कारण यह है कि उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखा था ग्रौर भिन्न-भिन्न लक्ष्य सामने रखे थे। एंगेल्स ने वेवेल को साफ़ साफ़, तीक्ष्णता से ग्रौर मोटी रूपरेखा में उन पूर्वाग्रहों की मूर्खता दिखाने का कार्यभार ग्रपने सामने रखा था, जो राज्य के वारे में प्रचलित थे (जिनका लासाल भी कुछ कम शिकार नहीं थे)। मार्क्स ने इस प्रश्न पर सिर्फ़ सरसरी तौर से ही विचार किया था, क्योंकि उनकी दिलचस्पी दूसरे विषय में, यानी कम्युनिस्ट समाज के विकास में थी।

ग्राधुनिक पूंजीवाद पर विकास के सिद्धान्त को—सवसे सुसंगत, पूर्ण, विचारनिष्ठ ग्रौर भरपूर ढंग से—लागू करना ही मार्क्स का पूरा सिद्धान्त है। इसलिए स्वभावतः मार्क्स के सामने ग्रपने सिद्धान्त को जैसे पूंजीवाद के ग्रानेवाले पतन पर, वैसे ही भावी कम्युनिज़्म के भावी विकास पर लागू करने का सवाल था।

भावी कम्युनिज़्म के भावी विकास के प्रश्न की विवेचना किन तथ्यों के ग्राधार पर की जा सकती है?

इस तथ्य के ग्राधार पर कि उसका जन्म पूंजीवाद से होता है, कि ऐतिहासिक दृष्टि से वह पूंजीवाद के ग्रन्दर से विकसित होता है, कि उसकी उत्पत्ति उस सामाजिक शक्ति की क्रिया के परिणामस्वरूप होती है, जिसको पूंजीवाद ने पैदा किया है। मार्क्स ने किसी प्रकार की काल्पनिक दुनिया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की तस्वीर खींचने की, या एक अज्ञेय वस्तु के सम्बंध में व्यर्थ की हवाई उड़ानें भरने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। कम्युनिज़्म के प्रश्न को मार्क्स बिलकुल उसी ढंग से पेश करते हैं, जैसे कोई प्रकृतिविज्ञानी, समझ लीजिये, किसी नयी जैवप्रकृति के विकास पर विचार करेगा, यदि वह जानता हो कि वह इस प्रकार पैदा हुई और इस निश्चित दिशा में परिवर्तित हो रही है।

सबसे पहले मार्क्स राज्य और समाज के पारस्परिक सम्बंध के विषय में गोथा कार्यक्रम से उत्पन्न होनेवाले भ्रम को दूर करते हैं। वह लिखते हैं :

"...वर्तमान समाज पूंजीवादी समाज है, जो मध्ययुगीन मिलावटों से कमोवेश मुक्त होकर, प्रत्येक देश के विशेष ऐतिहासिक विकास से कमोवेश संशोधित होकर, और कमोवेश विकसित होकर प्रत्येक सभ्य देश में मौजूद है। इसके विपरीत, "वर्तमान राज्य" प्रत्येक देश की सीमा के साथ बदल जाता है। प्रशियाई-जर्मन साम्राज्य में वह उससे भिन्न है, जो स्विट्ज़रलैंड में है; इंगलैंड में वह उससे भिन्न है, जो संयुक्त राज्य अमरीका में है। इसलिए "वर्तमान राज्य" केवल कपोल कल्पना है।

"फिर भी रूप की विविध विभिन्नताओं के बावजूद, विभिन्न सभ्य देशों के विभिन्न राज्यों में एक यह चीज़ समान है कि वे कम या ज्यादा विकसित आधुनिक पूंजीवादी समाज पर आधारित हैं। इसलिए उनकी कुछ मौलिक चारित्रिकताएं भी समान हैं। इस अर्थ में, उस भविष्य के विपरीत, जिसमें उसका वर्तमान आधार, यानी पूंजीवादी समाज मर चुका होगा, "वर्तमान राज्य" की बात करना संभव है।

"फिर प्रश्न इस तरह पेश आता है: कम्युनिस्ट समाज में राज्य का रूपान्तर क्या होगा? दूसरे शब्दों में उस समय उसके कौनसे ऐसे सामाजिक काम बाक़ी रहेंगे, जो राज्य के वर्तमान कामों जैसे होंगे? इस प्रश्न का उत्तर केवल वैज्ञानिक रूप से ही दिया जा सकता है, और "जनता" शब्द को "राज्य" शब्द के साथ हज़ार तरीक़े से जोड़ने-मिलाने पर भी उस समस्या के समाधान को नजदीक लेश बराबर भी नहीं पहुंचा जा सकता..."

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस तरह से "जनता के राज्य" की तमाम वकवास की खिल्ली उड़ाकर मार्क्स प्रश्न को ठीक से प्रस्तुत कर देते हैं, और हमें जैसे एक प्रकार से चेतावनी देते हैं कि वैज्ञानिक उत्तर देने के लिए केवल अच्छी तरह से स्थापित वैज्ञानिक तथ्यों का ही सहारा लिया जाना चाहिए।

पहला तथ्य, जिसे विकास के पूरे सिद्धान्त ने, सम्पूर्ण विज्ञान ने, अधिकतम अचूक ढंग से स्थापित कर दिया है,—और जिसे कल्पनावादी भूल गये, जिसे समाजवादी क्रान्ति से भय खानेवाले वर्तमान अवसरवादियों ने भुला रखा है,—यह है कि ऐतिहासिक रूप से पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में **संक्रमण** की एक विशेष मंज़िल, या एक विशेष अवस्था अवश्य होगी।

२. पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण

> मार्क्स आगे कहते हैं: "पूंजीवादी और कम्यूनिस्ट समाज के बीच एक के दूसरे में क्रान्तिकारी रूपान्तरण का काल आता है। उसी के अनुरूप राजनैतिक संक्रमण का काल भी होता है, जिसमें राज्य **सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व** के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता..."

मार्क्स ने आधुनिक पूंजीवादी समाज में सर्वहारा वर्ग की भूमिका के विश्लेषण के आधार पर, इस समाज के विकास से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर, और सर्वहारा वर्ग तथा पूंजीपति-वर्ग के परस्पर-विरोधी हितों में मेल न हो सकने के आधार पर यह नतीजा निकाला था।

प्रश्न को पहले इस भांति प्रस्तुत किया गया था: अपने को मुक्त करने के लिए सर्वहारा वर्ग को पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता उलट देना चाहिए, राजनैतिक सत्ता जीतना चाहिए और अपना क्रान्तिकारी अधिनायकत्व क़ायम करना चाहिए।

अब प्रश्न को कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है: पूंजीवादी समाज से—जो कम्युनिज़्म की दिशा में बढ़ रहा है—कम्युनिस्ट समाज में संक्रमण "राजनैतिक संक्रमण-काल" के बिना असंभव है और उस काल में राज्य केवल सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी अधिनायकत्व ही हो सकता है।

तो जनवाद के साथ इस अधिनायकत्व का क्या सम्बंध है?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हम देख चुके हैं कि 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में "सर्वहारा वर्ग को उठाकर शासक वर्ग के पद पर पहुंचाने" और "जनवाद की प्राप्ति को जीतने" के दो विचारों को महज़ एक साथ रख दिया गया है। ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है, उसके आधार पर अब अधिक निश्चित रूप से यह निर्धारित करना संभव हो गया है कि पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण के दौरान जनवाद किस प्रकार बदलता है।

पूंजीवादी समाज का विकास अगर अधिकतम अनुकूल परिस्थितियों में हो, तो उस समाज के अंतर्गत जनवादी जनतंत्र में हमें कमोबेश पूर्ण जनवाद मिलता है। लेकिन यह जनवाद सदा पूंजीवादी शोषण के संकुचित दायरे में घिरा रहता है, और इसलिए, वास्तव में, वह सदा केवल अल्पसंख्यक लोगों के लिए, केवल सम्पत्तिशाली वर्गों के लिए, केवल धनवानों के लिए जनवाद रहता है। पूंजीवादी समाज में स्वतंत्रता सदा लगभग उतनी ही रहती है, जितनी वह प्राचीन यूनानी जनतंत्रों में थी: दासों के स्वामियों के लिए स्वतंत्रता। पूंजीवादी शोषण की परिस्थितियों में आधुनिक उजरती ग़ुलाम भूख और ग़रीबी से इतने कुचले होते हैं कि वे "जनवाद, राजनीति के बखेड़े में नहीं पड़ सकते"; साधारण शान्तिपूर्ण परिस्थितियों में आबादी की बहुसंख्या सामाजिक और राजनैतिक जीवन में हिस्सा लेने से वंचित रहती है।

इस कथन की सत्यता की पुष्टि संभवतः सबसे स्पष्ट रूप में जर्मनी द्वारा होती है, ठीक इस वजह से कि उस देश में सांविधानिक वैधता दृढ़तापूर्वक बहुत काफ़ी देर तक, लगभग आधी शताब्दी तक (१८७१ से १९१४ तक) क़ायम रही थी, और इस काल में सामाजिक-जनवाद ने उस "वैधता का फ़ायदा उठाने में" दूसरे तमाम देशों की अपेक्षा जर्मनी में सबसे अधिक सफलता प्राप्त की थी और उसने मज़दूरों को दुनिया में और कहीं की अपेक्षा अधिक अनुपात में एक राजनैतिक पार्टी के अन्दर संगठित कर लिया था।

पूंजीवादी समाज के अन्दर पाया जानेवाला राजनैतिक दृष्टि से सजग और क्रियाशील उजरती ग़ुलामों का वह सबसे बड़ा अनुपात क्या है? डेढ़ करोड़ उजरती मज़दूरों में से सामाजिक-जनवादी पार्टी के दस लाख सदस्य! डेढ़ करोड़ में से तीस लाख ट्रेड-यूनियनों में संगठित!

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक तुच्छ अल्पसंख्या के लिए जनवाद, धनवानों के लिए जनवाद—यही पूंजीवादी समाज का जनवाद है। अगर हम पूंजीवादी जनवाद की मशीनरी की और निकट से जांच करें, तो हम देखते हैं कि हर जगह—मताधिकार की "छोटी-छोटी"—तथाकथित छोटी-छोटी—तफ़सीलों (निवास-स्थान सम्बंधी योग्यता, औरतों की मताधिकारहीनता, आदि) में, प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं की तकनीक में, सभाधिकार की वास्तविक अड़चनों में (सार्वजनिक इमारतें "भिखारियों" के लिए नहीं हैं!), दैनिक अख़बारों के ख़ालिस पूंजीवादी संगठन, आदि, आदि में—जनवाद पर असंख्य पाबन्दियां पायी जाती हैं। ग़रीबों के मार्ग में ये प्रतिबन्ध, विवर्जन, निषेध, अड़चनें तुच्छ दिखती हैं, ख़ास तौर से उसको जिसने ख़ुद तंगी का अनुभव कभी नहीं किया है, और जो उत्पीड़ित वर्गों के सामूहिक जीवन के निकट सम्पर्क में कभी नहीं रहा है (और अगर सौ में से निनानवे नहीं, तो दस में से नौ पूंजीवादी प्रचारक और राजनीतिज्ञ इसी श्रेणी के होते हैं),—लेकिन इन सब प्रतिबंधों का कुल परिणाम यही होता है कि ग़रीब लोग राजनैतिक जीवन से, जनवाद में सक्रिय शिरकत से, अलग कर दिये जाते हैं, ढकेल दिये जाते हैं।

मार्क्स ने जब कम्यून के अनुभव का विश्लेषण करते समय कहा था कि उत्पीड़ितों को हर कुछ वर्षों में एक बार यह तय करने की इजाज़त दी जाती है कि उत्पीड़क वर्ग के कौनसे विशेष प्रतिनिधि संसद में जाकर उनका प्रतिनिधित्व करें और उनका दमन करें, तब उन्होंने पूंजीवादी जनवाद के इस सार को बहुत अच्छी तरह पहचान लिया था![39]

लेकिन इस पूंजीवादी जनवाद से—जो अनिवार्य रूप से संकुचित होता है, जो ग़रीबों को चोरी चोरी अलग कर देता है और इसी लिए जिसमें पाखण्ड और झूठ कूट कूटकर भरा होता है—"अधिकाधिक जनवाद" की ओर आगे विकास सरलता से, शान्तिपूर्वक और सीधे नहीं होता, जैसा कि उदारतावादी प्रोफ़ेसर और निम्नपूंजीवादी अवसरवादी चाहते हैं कि हम विश्वास कर लें। नहीं, आगे, यानी कम्युनिज़्म की ओर विकास, सर्वहारा अधिनायकत्व के जरिए होता है, और उसके अलावा और किसी ढंग से नहीं हो सकता, क्योंकि पूंजीवादी शोषकों के प्रतिरोध को और किसी ज़रिए या और किसी ढंग से नहीं तोड़ा जा सकता।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेकिन सर्वहारा अधिनायकत्व का, यानी उत्पीड़कों को कुचलने के लिए उत्पीड़ितों के हरावल को शासक वर्ग के रूप में संगठित करने का, परिणाम केवल जनवाद का विस्तार नहीं हो सकता। जनवाद के ज़बर्दस्त विस्तार के साथ ही साथ, जो पहली बार धन-कुबेरों का जनवाद न होकर ग़रीबों का जनवाद, जनता का जनवाद बनता है, सर्वहारा अधिनायकत्व उत्पीड़कों, शोषकों और पूंजीपतियों की स्वतंत्रता पर बहुत-से बंधन भी लगाता है। मानवजाति को उजरती ग़ुलामी से मुक्त करने के लिए हमें उन्हें कुचल देना चाहिए, उनके प्रतिरोध को बलपूर्वक तोड़ देना चाहिए। यह स्पष्ट है कि जहां ज़ोर-ज़बर्दस्ती है, बलप्रयोग है, वहां स्वतंत्रता नहीं हो सकती, जनवाद नहीं हो सकता।

एंगेल्स ने इस बात को बेबेल के नाम अपने पत्र में, बहुत ही बढ़िया ढंग से व्यक्त किया था जब उन्होंने, जैसा कि पाठकों को याद होगा, कहा था कि "सर्वहारा वर्ग राज्य का इस्तेमाल स्वतंत्रता के लिए नहीं, बल्कि अपने दुश्मनों को दबाये रखने के लिए करता है, और ज्यों ही स्वतंत्रता की बात करना संभव हो जाता है, त्यों ही राज्य जैसी चीज़ का अस्तित्व नहीं रहता।"

जनता की विशाल बहुसंख्या के लिए जनवाद, और जनता के शोषकों और उत्पीड़कों का बलपूर्वक दमन, यानी जनवाद से उनको बाहर रखना – यही वह परिवर्तन है जो जनवाद के अंतर्गत पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण के दौरान होता है।

केवल कम्युनिस्ट समाज में ही, जब पूंजीपतियों के विरोध को पूर्ण रूप से कुचल दिया गया हो, जब पूंजीपति समाप्त हो चुके हों, जब कोई वर्ग न रह गये हों (यानी, जब उत्पादन के सामाजिक साधनों के प्रति समाज के सदस्यों के बीच कोई अन्तर न रह गये हों), केवल तभी "स्वतंत्रता की बात करना संभव होता है और राज्य का विलोप हो जाता है"। केवल तभी वास्तव में पूर्ण जनवाद, अपवाद रहित जनवाद, संभव हो सकता है और उसकी स्थापना की जा सकती है। और केवल तभी जनवाद इस सीधे-सादे तथ्य की बदौलत धीरे-धीरे विलुप्त होने लगता है कि पूंजीवादी ग़ुलामी से, पूंजीवादी शोषण की अकथनीय विभीषिकाओं, बर्बरताओं, मूर्खताओं और गन्दगियों से मुक्त होकर, लोग धीरे-धीरे सामाजिक आदान-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रदान के उन साधारण नियमों को मानने के आदी हो जाते हैं, जो सदियों से मालूम हैं और जो हज़ारों वर्ष से तमाम पुस्तकों में सूत्र-रूप में दोहराये गये हैं। लोग उन्हें विना किसी वलप्रयोग के, विना किसी ज़ोर-ज़बर्दस्ती और दबाव के, बिना राज्य नामक ज़ोर-ज़बर्दस्ती की विशेष मशीनरी के, मानने के आदी हो जाते हैं।

"राज्य धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता है" – ये शब्द बहुत सोच-समझकर चुने गये हैं, क्योंकि वे प्रक्रिया की दोनों विशेषताओं को – उसके धीरे-धीरे और अपने आप चलनेवाली क्रिया को – प्रकट करते हैं। ऐसा केवल आदत से ही हो सकता है और निस्सन्देह होगा, क्योंकि हम अपने इर्द-गिर्द लाखों वार देखते हैं कि जब कोई शोषण नहीं होता, जब कोई ऐसी चीज़ नहीं होती, जिससे क्रोध आये, जो विरोध और विद्रोह जाग्रत करे, या जिसकी वजह से दमन की आवश्यकता पड़े, तो लोग कितनी आसानी से सामाजिक आदान-प्रदान के आवश्यक नियमों का पालन करने के आदी हो जाते हैं।

अतः, पूंजीवादी समाज में जो जनवाद होता है, वह कटा-छंटा, निकृष्ट और झूठा होता है; वह केवल धनवानों के लिए, अल्पसंख्यक लोगों के लिए जनवाद होता है। अल्पसंख्यक के, शोषकों के आवश्यक दमन के साथ-साथ, सर्वहारा अधिनायकत्व ही, कम्युनिज़्म में संक्रमण-काल ही, जनता के लिए, जनता के बहुमत के लिए, पहली वार जनवाद की सृष्टि करेगा। वास्तविक रूप से पूर्ण जनवाद की स्थापना केवल कम्युनिज़्म ही कर सकता है, और यह जनवाद जितना ही पूर्ण होगा, उतनी ही तेज़ी से वह अनावश्यक बन जायेगा और धीरे-धीरे अपने आप विलुप्त हो जायेगा।

दूसरे शब्दों में: पूंजीवाद के अन्तर्गत राज्य अपने असली माने में राज्य होता है, यानी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को, और वह भी अल्पसंख्यकों द्वारा बहुसंख्यक लोगों को, दबाने की विशेष मशीनरी होता है। स्वाभाविक ही है कि शोषक अल्पसंख्या द्वारा शोषित बहुसंख्या को व्यवस्थित ढंग से दबाने जैसे काम को करने के लिए दमन के काम में सबसे ज़्यादा खूंख़ारी और बर्बरता की ज़रूरत होती है, ख़ून के समुद्रों की ज़रूरत होती है, जिनसे होकर मानवजाति ग़ुलामी, भूदासता और उजरती श्रम की अवस्थाओं में अपनी राह चलती जा रही है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगे, पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण-काल में अभी दमन ज़रूरी होता है, लेकिन अब वह शोषितों की बहुसंख्या द्वारा शोषक अल्पसंख्या का दमन होता है। एक विशेष उपकरण की, दमन की एक विशेष मशीनरी की, "राज्य" की, ज़रूरत अभी रहती है, लेकिन अब वह संक्रमणकालीन राज्य होता है। वह सही माने में राज्य नहीं रह जाता, क्योंकि कल के उजरती गुलामों की बहुसंख्या द्वारा शोषकों की अल्पसंख्या के दमन का काम अपेक्षाकृत इतना सरल, आसान और स्वाभाविक है कि उसमें गुलामों, भूदासों या उजरती मज़दूरों के विद्रोहों के दमन की तुलना में बहुत कम ख़ून बहेगा, और उसके लिए मानवजाति को बहुत कम क़ीमत चुकानी पड़ेगी। और आबादी की इतनी विशाल बहुसंख्या तक जनवाद के विस्तार से यह बात मेल खाती है कि दमन के लिए एक विशेष मशीनरी की आवश्यकता ग़ायब होने लगेगी। यह स्वाभाविक है कि शोषक लोग एक बहुत जटिल मशीनरी के बिना जनता को दबाने का काम करने में असमर्थ हैं, लेकिन जनता शोषकों को बहुत ही सरल "मशीनरी" से ही, लगभग बिना किसी "मशीनरी" के, बिना किसी विशेष उपकरण के, केवल हथियारबन्द जन-समूह के महज़ संगठन (जैसे कि, आगे आनेवाली बात को यहीं कह दें, मज़दूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों) द्वारा दबा सकती है।

अन्तिम बात यह कि केवल कम्युनिज़्म ही राज्य को पूर्ण रूप से अनावश्यक बनाता है, क्योंकि दबाये जाने के लिए कोई नहीं रह जाता। इस "कोई नहीं" का मतलब वर्ग से है, आबादी के एक निश्चित अंग के ख़िलाफ़ व्यवस्थित लड़ाई से है। हम कल्पनावादी नहीं हैं और हम इस संभावना और अनिवार्यता से ज़रा भी इनकार नहीं करते कि इक्के-दुक्के लोग ज़्यादतियां कर सकते हैं, और न इस बात की ज़रूरत से इनकार करते हैं कि इस तरह की ज़्यादतियों को रोकना चाहिये। लेकिन, पहले तो इस काम के लिए दमन की किसी विशेष मशीनरी या विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं है। इस काम को हथियारबन्द जनता ख़ुद करेगी और उतनी ही सरलता और तत्परता से करेगी, जितनी सरलता और तत्परता से आधुनिक समाज के अन्दर भी, सभ्य लोगों का एक समूह किन्हीं दो लड़ते हुए व्यक्तियों को छुड़ा देता है, या किसी स्त्री के ऊपर आक्रमण

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोकने के लिए हस्तक्षेप करता है। और दूसरे, हम जानते हैं कि ज़्यादतियों का, जो सामाजिक आदान-प्रदान के नियमों के उल्लंघन में निहित हैं, मूल सामाजिक कारण जनता का शोषण, उसकी तंगी और उसकी ग़रीबी है। इस मुख्य कारण के दूर हो जाने पर ज़्यादतियों का भी अनिवार्य रूप से "धीरे-धीरे विलोप" शुरू हो जायेगा। हम यह नहीं जानते कि कितनी जल्दी और किस क्रम से, लेकिन हम यह जानते हैं कि वे धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेंगी। उनके धीरे-धीरे विलुप्त हो जाने के साथ राज्य भी धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेगा।

विना कल्पनावादी उड़ानें भरे मार्क्स ने उस चीज़ को अधिक पूरी तरह से वताया था जिसे उस भविष्य के वारे में, यानी कम्युनिस्ट समाज की निचली और उच्चतम अवस्थाओं (रूपों, मंज़िलों) के बीच के फ़र्क़ के वारे में, इस समय वताया जा सकता है।

३. कम्युनिस्ट समाज की प्रथम अवस्था

'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' में मार्क्स लासाल की इस धारणा को व्योरेवार ढंग से ग़लत सावित करते हैं कि समाजवाद के अन्तर्गत मज़दूर को "उसके श्रम की अघट" या "सम्पूर्ण पैदावार" मिलेगी। मार्क्स वताते हैं कि सारे समाज के सम्पूर्ण सामाजिक श्रम में से एक संरक्षित निधि, उत्पादन को वढ़ाने के लिए निधि, मशीनों के "घिसे या टूटे पुर्ज़ों" को वदलने, आदि के लिये निधि अलग करना ज़रूरी है। फिर, इसी तरह उपभोग की वस्तुओं में से भी शासन के ख़र्च के लिये, स्कूलों, अस्पतालों, बूढ़े लोगों के घरों, आदि, आदि के लिए निधि अलग करना होगा।

लासाल के अस्पष्ट, गोलमोल और आम कथन ("मज़दूर को उसके श्रम की सम्पूर्ण पैदावार") के वजाय, मार्क्स गंभीरतापूर्वक इस वात पर विचार करते हैं कि समाजवादी समाज को अपना कामकाज किस प्रकार चलाना होगा। मार्क्स एक ऐसे समाज के जीवन की परिस्थितियों का, जिसमें पूंजीवाद नहीं रह जायेगा, ठोस ढंग से विश्लेषण करने के लिए आगे वढ़ते हैं, और कहते हैं:

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"यहां" (मज़दूरों की पार्टी के कार्यक्रम का विश्लेषण करते समय) "जिस चीज़ पर हमें विचार करना है, वह कम्युनिस्ट समाज है, उस रूप में नहीं जिसमें वह ख़ुद अपनी नींव पर विकसित हुआ है, बल्कि इसके विपरीत, उस रूप में जिसमें वह पूंजीवादी समाज में से निकलता है। इसी कारण, उसके ऊपर, आर्थिक रूप से, नैतिक रूप से, बौद्धिक रूप से, हर प्रकार से, उस पुराने समाज के, जिसके गर्भ से वह निकलता है, जन्म-चिन्हों की छाप लगी होती है।"

और यही कम्युनिस्ट समाज है, जो अभी अभी पूंजीवाद के गर्भ से निकलकर दुनिया में आया है और जिसके ऊपर पुराने समाज के जन्म-चिन्हों की हर प्रकार से छाप लगी हुई है और जिसे मार्क्स कम्युनिस्ट समाज की "प्रथम" या निचली अवस्था कहते हैं।

उत्पादन के साधन व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति नहीं रह गये हैं। उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार है। समाज का प्रत्येक सदस्य सामाजिक रूप से आवश्यक मेहनत का एक हिस्सा पूरा करके समाज से यह प्रमाणपत्र पाता है कि उसने इतना इतना काम किया है और इस प्रमाणपत्र के आधार पर, उपभोग की वस्तुओं के सार्वजनिक भंडार में से उसी के अनुसार मात्रा में उसको वस्तुएं मिलती हैं। इसलिये, श्रम के उतने हिस्से के कटने के बाद जो सार्वजनिक निधि में जाता है, प्रत्येक मज़दूर समाज से उतना ही पाता है जितना उसने उसे दिया था।

देखने में यह "समानता" का साम्राज्य प्रतीत होता है।

लेकिन लासाल जब इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को नज़र में रखकर (जिसे आम तौर से समाजवाद कहा जाता है, लेकिन मार्क्स ने जिसे कम्युनिज़्म की प्रथम अवस्था कहा है) कहते हैं, कि यह "न्यायोचित वितरण" है, कि यह "समान मेहनत की पैदावार में सभी का समान अधिकार" है, तो वह ग़लती करते हैं, और मार्क्स उस ग़लती का पर्दाफ़ाश कर देते हैं।

मार्क्स कहते हैं, "समान अधिकार" निस्सन्देह यहां है, लेकिन वह अब भी "पूंजीवादी अधिकार" है, जो प्रत्येक अधिकार की तरह,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असमानता को पहले ही मानकर चलता है। प्रत्येक अधिकार का अर्थ विभिन्न लोगों पर एक ही माप का इस्तेमाल होता है, जो वास्तव में एक जैसे नहीं होते, एक दूसरे के बराबर नहीं होते। यही वजह है कि "समान अधिकार" असल में समानता का उल्लंघन और एक अन्याय है। असल में, प्रत्येक मनुष्य, दूसरे मनुष्य के बराबर सामाजिक मेहनत करने के बाद सामाजिक पैदावार का (ऊपर बतायी हुई कटौती के बाद) समान हिस्सा पाता है।

लेकिन सब मनुष्य एक जैसे नहीं हैं: एक ताक़तवर है, एक कमज़ोर है, एक शादीशुदा है, दूसरा नहीं है, एक के ज़्यादा बच्चे हैं, दूसरे के कम, इत्यादि। और मार्क्स जो निष्कर्ष निकालते हैं वह यह है:

> "...समान श्रम और इसलिये सामाजिक उपभोग निधि में से समान हिस्से के तहत वास्तव में एक को दूसरे से ज़्यादा मिलेगा, एक दूसरे से ज्यादा धनी बन जायेगा, इत्यादि। इन तमाम ख़राबियों से बचने के लिए अधिकार को समान होने के बजाय असमान होना होगा..."

इसलिये, कम्युनिज़्म की प्रथम अवस्था अभी न्याय और समानता नहीं प्रदान कर सकेगी: धन-सम्पत्ति के सम्बंध में फ़र्क़, और अन्यायपूर्ण फ़र्क़, मौजूद रहेंगे, लेकिन मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असंभव हो जायेगा, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर, फ़ैक्टरियों, मशीनों, ज़मीन, आदि पर व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में क़ब्ज़ा करना असंभव हो जायेगा। आम "समानता" और "न्याय" के बारे में लासाल के निम्नपूंजीवादी और उलझे हुए शब्दजाल को छिन्न-विछिन्न करते हुए मार्क्स कम्युनिस्ट समाज के विकास का रास्ता दिखाते हैं, जिसे आरंभ में मजबूर होकर उत्पादन के साधनों पर अलग अलग व्यक्तियों के क़ब्ज़े के "अन्याय" मात्र का ही अन्त करना पड़ता है, और जो "मेहनत की मात्रा के अनुसार" खपत की चीज़ों के (आवश्यकता के अनुसार नहीं) बंटवारे में निहित दूसरे अन्याय को फ़ौरन ख़त्म करने में असमर्थ है।

बाज़ारू अर्थशास्त्री, जिनमें पूंजीवादी प्रोफ़ेसर और "हमारे" तुगान भी शामिल हैं, बराबर समाजवादियों की भर्त्सना करते हैं कि वे लोगों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की असमानता को भूल जाते हैं और इस असमानता का अन्त करने के "स्वप्न देखते हैं"। इस तरह की भर्त्सना, जैसा कि हम देखते हैं, इन पूंजीवादी सिद्धांतवेत्ताओं की हद दर्जे की जहालत ही साबित करती है।

मार्क्स न केवल मनुष्यों की अनिवार्य असमानता का ही अधिकतम अचूक ध्यान रखते हैं, बल्कि वह इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि केवल उत्पादन के साधनों को सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति बना देने से ही (जिसे आम तौर से "समाजवाद" कहा जाता है) बंटवारे की बुराइयां और "पूंजीवादी अधिकार" की असमानता नहीं दूर हो जातीं, जो तब तक जारी रहता है जब तक उपजों का बंटवारा "मेहनत की मात्रा के अनुसार" होता रहता है।

> मार्क्स आगे कहते हैं: "...लेकिन कम्युनिस्ट समाज की प्रथम अवस्था में, जिसमें वह एक लम्बी प्रसव-पीड़ा के बाद पूंजीवादी समाज के गर्भ से अभी-अभी बाहर आया है, इन बुराइयों का होना अनिवार्य है। अधिकार समाज की आर्थिक बनावट और उसके द्वारा निर्धारित सांस्कृतिक विकास से ऊंचा कभी नहीं हो सकता..."

इस प्रकार, कम्युनिस्ट समाज की प्रथम अवस्था में (जिसे आम तौर से समाजवाद कहा जाता है) पूर्ण "पूंजीवादी अधिकार" का नहीं, बल्कि उसके केवल एक भाग का, तब तक हो चुकनेवाली आर्थिक क्रांति के अनुपात में ही, अर्थात् उत्पादन के साधनों के सम्बन्ध में ही—उन्मूलन होता है। "पूंजीवादी अधिकार" उन्हें अलग अलग व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति मानता है। समाजवाद उन्हें सब की सम्पत्ति बना देता है। उस हद तक—और केवल उसी हद तक—"पूंजीवादी अधिकार" लुप्त होता है।

लेकिन जहां तक उसके दूसरे भाग का सम्बंध है, वह अब भी मौजूद रहता है, वह समाज के सदस्यों के बीच उत्पादित चीज़ों के वितरण और श्रम के विनियोजन में एक नियामक (निर्धारक शक्ति) की हैसियत में मौजूद रहता है। यह समाजवादी उसूल कि "जो काम नहीं करता वह खायेगा भी नहीं" अमल में आ चुका है, दूसरा समाजवादी उसूल भी कि "श्रम की बराबर मात्रा के लिये उत्पादित चीज़ों की बराबर मात्रा"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमल में आ चुका है। लेकिन अभी यह कम्युनिज़्म नहीं होता, और उस "पूंजीवादी अधिकार" का, जो असमान व्यक्तियों को, मेहनत की असमान (वास्तव में असमान) मात्रा के वदले में उत्पादित चीज़ों की समान मात्रा देता है, अभी ख़ात्मा नहीं करता।

मार्क्स कहते हैं कि यह एक "बुराई" है, लेकिन कम्युनिज़्म की प्रथम अवस्था में वह अनिवार्य है, क्योंकि अगर हमें कल्पनावाद में नहीं फंसना है, तो हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि पूंजीवाद का तख़्ता उलटने के बाद फ़ौरन ही लोग अधिकार के किसी मानक के बिना समाज के लिये काम करना सीख जायेंगे। और सचमुच पूंजीवाद का ख़ात्मा ऐसे परिवर्त्तन का आर्थिक पूर्वाधार फ़ौरन ही नहीं पैदा कर देता।

अब, चूंकि "पूंजीवादी अधिकार" के अलावा अधिकार का और कोई मानक नहीं होता, इसलिये, इस हद तक राज्य की अभी ज़रूरत रहती है, जो उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की रक्षा करने के साथ-साथ श्रम की समानता और उत्पादित वस्तुओं के वितरण की समानता की भी रक्षा करेगा।

राज्य उस हद तक विलुप्त हो जाता है, जिस हद तक अब कोई पूंजीपति, कोई वर्ग नहीं रह जाते, और इसलिये किसी वर्ग को दबाया नहीं जा सकता।

लेकिन अभी राज्य पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं होता, क्योंकि "पूंजीवादी अधिकार" की, जो वास्तविक असमानता को पवित्रता का जामा पहनाता है, रक्षा करने का काम अभी भी बाक़ी रहता है। राज्य के पूर्ण रूप से विलुप्त होने के लिये पूर्ण कम्युनिज़्म ज़रूरी है।

४. कम्युनिस्ट समाज की उच्चतम अवस्था

मार्क्स आगे कहते हैं: "...कम्युनिस्ट समाज की उच्चतम अवस्था में, जब श्रम-विभाजन के प्रति व्यक्तियों की दासतावाली मातहती और उसके साथ-साथ मानसिक और शारीरिक श्रम की प्रतिपक्षता का अन्त हो जाता है; जब श्रम केवल जीवन का साधन होने के बजाय जीवन की मुख्य आवश्यकता बन जाता है; जब

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यक्ति के चतुर्मुखी विकास के साथ-साथ उत्पादन की शक्तियां भी वढ़ जाती हैं और सार्वजनिक धन के तमाम स्रोत और अधिक परिपूर्ण होकर प्रवाहित होने लगते हैं, — सिर्फ़ तभी पूंजीवादी अधिकार के संकुचित दायरे की सीमा को पूरी तरह पार किया जा सकता है और समाज अपने झण्डे पर लिख सकता है : 'हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी ज़रूरत के अनुसार'।"

एंगेल्स ने जिन शव्दों में "स्वतंत्रता" और "राज्य" शव्दों को मिलाने के प्रयत्नों की मूर्खता का निर्ममतापूर्वक मज़ाक़ उड़ाया था, उनकी सचाई को हम केवल अव ही पूर्ण रूप से समझ सकते हैं। जव तक राज्य मौजूद है, तव तक स्वतंत्रता नहीं हो सकती। जब स्वतंत्रता होगी, तव राज्य नहीं रह जायेगा।

राज्य के पूर्ण विलोप का आर्थिक आधार कम्युनिज़्म के विकास की ऐसी ऊंची मंज़िल होती है, जहां पहुंचकर मानसिक और शारीरिक श्रम की प्रतिपक्षता ग़ायव हो जाती है और परिणामतः आधुनिक सामाजिक असमानता का एक मुख्य स्रोत ग़ायव हो जाता है, तिस पर वह स्रोत, जिसे उत्पादन के साधनों को सार्वजनिक सम्पत्ति वना देने मात्र से, पूंजीपतियों के सम्पत्तिहरण मात्र से किसी तरह भी फ़ौरन नहीं मिटाया जा सकता।

इस सम्पत्तिहरण से उत्पादन की शक्तियों का वहुत ज्यादा विकास करने की संभावना उत्पन्न हो जायेगी। और यह देखकर कि पूंजीवाद आज ही इस विकास को किस तरह अकल्पनीय हद तक रोक रहा है, यह देखकर कि तकनीक के वर्त्तमान स्तर के आधार पर ही कितनी अधिक प्रगति की जा सकती, हमें पूर्ण विश्वास के साथ यह कहने का अधिकार है कि पूंजीपतियों के सम्पत्तिहरण का अनिवार्य परिणाम मानवसमाज की उत्पादक शक्तियों का ज़वर्दस्त विकास होगा। लेकिन यह विकास कितनी तेज़ी से होगा, कितनी जल्दी वह श्रम-विभाजन से नाता तोड़ने की, मानसिक और शारीरिक श्रम की प्रतिपक्षता दूर करने की, श्रम को "जीवन की मुख्य आवश्यकता" में बदल देने की, सीमा पर पहुंच जायेगा — यह न हम जानते ही हैं और न जान सकते हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी लिये इस प्रक्रिया की देरतलवी और कम्युनिज़्म की उच्चतम अवस्था के विकास की तेजी के ऊपर उसकी निर्भरता पर ज़ोर देते हुए, हमें केवल राज्य के धीरे-धीरे विलोप की अनिवार्यता की वात कहने का ही हक़ है। उसके विलोप की अवधि अथवा उसके ठोस रूपों के प्रश्न को हम बिलकुल खुला छोड़ देंगे, क्योंकि इन सवालों का उत्तर देने के लिये कोई सामग्री नहीं है।

राज्य का पूर्ण रूप से विलोप तव हो सकेगा, जव समाज "हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी ज़रूरत के अनुसार" के नियम को अपना लेगा, यानी जव लोग सामाजिक आदान-प्रदान के बुनियादी नियमों का पालन करने के इतने आदी हो चुकेंगे, और जव उनका श्रम इतना उत्पादनशील हो चुकेगा कि वे स्वेच्छा से अपनी योग्यता के अनुसार काम करने लगेंगे। "पूंजीवादी अधिकार के संकुचित दायरे की सीमा" को, जो एक व्यक्ति को शाइलाक[10] की हृदयहीनता से यह हिसाव लगाने के लिये मजवूर करती है कि कहीं उसने दूसरे से आधा घण्टा अधिक तो नहीं काम कर दिया, कि कहीं उसे दूसरों से कम तनख़ाह तो नहीं मिल रही है, – इस संकुचित सीमा को तव पार किया जायेगा। तव समाज को इस वात की ज़रूरत नहीं रहेगी कि वह हरेक को वांटे जानेवाली उत्पादित चीज़ों की मात्रा का विनियमन करे; हरेक स्वतंत्रतापूर्वक "अपनी ज़रूरतों के अनुसार" ले लेगा।

पूंजीवादी दृष्टिकोण से यह कह देना कि इस तरह की सामाजिक व्यवस्था "केवल एक काल्पनिक चीज़" है, और यह कहकर समाजवादियों का मज़ाक़ उड़ाना आसान है कि वे तो हरेक से वादा करते हैं कि नागरिकों के व्यक्तिगत श्रम के ऊपर किसी तरह के नियंत्रण के विना उन्हें समाज से चाहे जितने भी चाकलेट, मोटरें, पियानो, आदि पाने का अधिकार होगा। आज भी अधिकतर पूंजीवादी "विद्वान" इस तरह मज़ाक़ उड़ाकर ही वस करते हैं और ऐसा करके अपना अज्ञान और पूंजीवाद की अपनी स्वार्थपूर्ण वकालत, दोनों प्रदर्शित कर देते हैं।

अज्ञान – क्योंकि यह चीज़ आज तक कभी किसी समाजवादी के दिमाग़ में नहीं घुसी कि वह "वादा करे" कि कम्युनिज़्म के विकास की उच्चतम अवस्था आयेगी; लेकिन महान समाजवादियों ने जव उसके आने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की भविष्यवाणी की है, तब वे यह मानकर चलते थे कि तब न तो श्रम की वर्तमान उत्पादकता रहेगी और न आज के कूपमंडूक लोग ही रहेंगे, जो पोम्यालोव्स्की की कहानियों में वूर्सा के विद्यार्थियों की तरह[1] सार्वजनिक सम्पत्ति के भण्डारों को "केवल मज़े के लिये" नष्ट कर सकते हैं और असंभव चीज़ों की मांगें रख सकते हैं।

जब तक कम्युनिज़्म की "उच्चतम" अवस्था नहीं आती, तब तक समाजवादियों की मांग है कि समाज और राज्य द्वारा श्रम और उपभोग की मात्रा पर सख़्त से सख़्त नियंत्रण हो, लेकिन इस नियंत्रण की शुरूआत करनी चाहिये पूंजीपतियों की सम्पत्ति को छीनकर, पूंजीपतियों पर मज़दूरों का नियंत्रण क़ायम करके और उसे चलाया जाना चाहिये हथियारबन्द मज़दूरों के राज्य द्वारा, न कि नौकरशाहों के राज्य द्वारा।

पूंजीवादी विचारकों (और त्सेरेतेली, चेर्नोव और मंडली की तरह के उनके पिछलग्गुओं) द्वारा पूजीवाद की स्वार्थपूर्ण वकालत इसी बात में निहित है कि वे आज की राजनीति से सम्बन्धित बुनियादी और तात्कालिक प्रश्नों, यानी पूंजीपतियों के सम्पत्तिहरण, एक विशाल "सिंडीकेट" के—सम्पूर्ण राज्य के—कार्यकर्त्ताओं और नौकरों के रूप में तमाम नागरिकों के परिवर्त्तन, और इस पूरे सिंडीकेट के सम्पूर्ण काम के वास्तविक रूप से जनवादी राज्य के, अर्थात् मज़दूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों के राज्य के, पूर्ण रूप से अधीनीकरण की जगह, दूर भविष्य की बहसें और बातें पेश कर देते हैं।

वास्तव में, जब कोई विद्वान प्रोफ़ेसर और उनके पीछे कूपमंडूक लोग, और उनके पीछे त्सेरेतेली और चेर्नोव जैसे लोग, तर्कहीन काल्पनिक दुनियाओं की, बोल्शेविकों के लम्बे-चौड़े वादों की, समाजवाद "लागू करने" की असंभावना की बात करते हैं, तो उनके दिमाग़ में कम्युनिज़्म की उच्चतम अवस्था या मंज़िल रहती है, जिसे "लागू करने" का न केवल कभी किसी ने वादा नहीं किया, बल्कि विचार भी नहीं किया, क्योंकि उसे आम तौर से "लागू" ही नहीं किया जा सकता।

और इससे हम समाजवाद और कम्युनिज़्म के वैज्ञानिक अन्तर पर आ जाते हैं, जिसका "सामाजिक-जनवादी" नाम की ग़लती बतलाते समय एंगेल्स ने अपने ऊपर उद्धृत अंश में ज़िक्र किया था। कम्युनिज़्म की प्रथम

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या निचली अवस्था और उसकी उच्चतम अवस्था का राजनैतिक भेद कालान्तर में संभवतः बहुत बड़ा होगा, लेकिन उस भेद को इस समय, पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत, स्वीकार करना तो निरी मूर्खता होगी और उसे संभवतः केवल कुछ अराजकतावादी व्यक्ति ही प्रमुख महत्त्व की बात कह सकते हैं (अगर अराजकतावादियों में अब भी ऐसे लोग हैं, जिन्होंने क्रोपोत्किन, ग्रैव, कोर्नेलीसेन तथा अराजकतावाद के अन्य "सितारों" के सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादियों में, या गे के अनुसार—जो अराजकतावादियों के अन्दर उन इने-गिने व्यक्तियों में से एक हैं जिनमें आत्माभिमान और विवेक की कुछ भावना बाक़ी है—"अराजकतावादी-खंदक़वादियों" में "प्लेखानोवी" रूपान्तरण से कुछ नहीं सीखा है)।

लेकिन समाजवाद और कम्युनिज्म का वैज्ञानिक अंतर स्पष्ट है। आम तौर पर जिसे समाजवाद कहा जाता है, उसे मार्क्स ने कम्युनिस्ट समाज की "प्रथम" या निचली अवस्था कहा था। जिस हद तक उत्पादन के साधन सब की सम्पत्ति बन जाते हैं, उस हद तक यहां "कम्युनिज़्म" शब्द भी लागू हो सकता है, बशर्ते कि हम यह न भूलें कि यह पूर्ण कम्युनिज़्म नहीं है। मार्क्स की व्याख्या का भारी महत्त्व इसमें है कि वह यहां भी भौतिकवादी द्वन्द्ववाद को, विकास के सिद्धांत को, सुसंगत रूप से लागू करते हैं और कम्युनिज़्म को एक ऐसी वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो पूंजीवाद के अन्दर से विकसित होती है। पण्डिताऊ ढंग से बनायी गयी, "गढ़ी गई" परिभाषाओं और शब्दों के बारे में निरर्थक विवाद (समाजवाद क्या है? कम्युनिज़्म क्या है?) में पड़ने के बजाय मार्क्स ने उन चीज़ों की व्याख्या की है जिन्हें हम कम्युनिज़्म की आर्थिक परिपक्वता की मंज़िलें कह सकते हैं।

अपनी प्रथम अवस्था, या पहली मंज़िल में कम्युनिज़्म आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया परिपक्व और पूंजीवादी परम्पराओं और प्रभावों से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। इसी लिये हमें यह दिलचस्प व्यापार देखने को मिलता है कि कम्युनिज़्म अपनी प्रथम अवस्था में "पूंजीवादी अधिकार के संकुचित दायरे" को क़ायम रखता है। निस्सन्देह उपभोग की चीज़ों के वितरण के संबंध में पूंजीवादी अधिकार पहले से ही अनिवार्य रूप से इस बात को मानता है कि पूंजीवादी राज्य भी अभी मौजूद है, क्योंकि अधिकार के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानकों को मनवाने के उपकरण के बिना अधिकार कोई माने नहीं रखता।

इसलिये कम्युनिज़्म के अन्तर्गत न केवल पूंजीवादी अधिकार, बल्कि पूंजीवादी राज्य भी—पूंजीपति-वर्ग के बिना—कुछ समय तक बना रहता है!

इसमें विरोधाभास या महज़ बुद्धि का द्वन्द्ववादी खेल दिख सकता है, जिसका कि मार्क्सवाद पर वे लोग अक्सर अभियोग लगाते हैं, जो उसके असाधारण रूप से गंभीर तत्त्वों का अध्ययन करने का ज़रा भी कष्ट नहीं उठाते।

लेकिन यथार्थ बात यह है कि प्रकृति और समाज दोनों में नये के अन्दर पुराने के बचे हुए अवशेष हमें जीवन में हर क़दम पर दिखलाई देते हैं। मार्क्स ने कम्युनिज़्म के अन्दर "पूंजीवादी" अधिकार का टुकड़ा मनमाने ढंग से नहीं घुसेड़ा था, बल्कि वह चीज़ बतायी थी जिसका पूंजीवाद के गर्भ से निकलते हुए समाज में होना आर्थिक और राजनैतिक रूप से अनिवार्य है।

अपनी मुक्ति के लिये पूंजीपतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष में मज़दूर-वर्ग के लिये जनवाद का प्रकाण्ड महत्त्व है। लेकिन जनवाद ऐसी सीमा बिलकुल नहीं है, जिससे आगे जाना ही नहीं चाहिये। सामन्तवाद से पूंजीवाद और पूंजीवाद से कम्युनिज़्म की ओर के मार्ग की मंज़िलों में से वह केवल एक मंज़िल है।

जनवाद का अर्थ है समानता। समानता के लिये सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का और एक नारे के रूप में समानता का भारी महत्त्व स्पष्ट हो जायेगा, यदि हम वर्गों के ख़ात्मे के रूप में उसके अर्थ को सही तौर से समझें। लेकिन जनवाद का अर्थ केवल औपचारिक समानता है और ज्यों ही उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के सम्बन्ध में समाज के तमाम सदस्यों की समानता की, अर्थात् श्रम की समानता और मज़दूरी की समानता की स्थापना हो जायेगी, त्यों ही, अनिवार्य रूप से, मानवजाति के सामने औपचारिक समानता से वास्तविक समानता की ओर आगे बढ़ने का, यानी "हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी ज़रूरत के अनुसार" के नियम को लागू करने का प्रश्न आ खड़ा होगा। किन मंज़िलों से, किन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमली क़दमों द्वारा मानवजाति इस परम लक्ष्य की ओर बढ़ेगी — यह हम न तो जानते हैं और न जान ही सकते हैं। लेकिन यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि समाजवाद के सम्बन्ध में यह साधारण पूंजीवादी धारणा कितनी बेहद मिथ्या है कि वह एक सर्वथा निर्जीव, मृत और हमेशा के लिये निश्चित चीज़ है, जबकि वास्तविकता यह है कि केवल समाजवाद से ही सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये — पहले आबादी के बहुमत का और फिर सम्पूर्ण आबादी का — तेज़, असली और सचमुच जन-व्यापी आन्दोलन आरंभ होगा।

जनवाद राज्य का एक रूप है, उसके बहुत-से रूपों में से एक। इसलिये, हर राज्य की तरह, वह भी एक तरफ़ तो लोगों के विरुद्ध संगठित, व्यवस्थित बलप्रयोग का द्योतक है, लेकिन दूसरी तरफ़, तमाम नागरिकों की समानता की, राज्य के ढांचे के निर्धारण और उसके प्रशासन के सम्बंध में सब के समान अधिकार की औपचारिक स्वीकृति का भी प्रमाण है। फिर यह बात इस तथ्य से सम्बन्धित है कि जनवाद के विकास की एक विशेष मंजिल में, वह पहले पूंजीवाद के ख़िलाफ़ क्रांतिकारी वर्ग को, अर्थात् सर्वहारा वर्ग को एकताबद्ध करता है, और उसे इस योग्य बनाता है कि वह राज्य की पूंजीवादी मशीनरी को, जनतांत्रिक-पूंजीवादी मशीनरी तक को, उसकी स्थायी फ़ौज, पुलिस और नौकरशाही को, कुचल दे, उसके टुकड़े-टुकड़े कर दे, उसे दुनिया से सदा के लिये मिटा दे, और उसके स्थान पर राज्य की एक अधिक जनवादी मशीनरी की स्थापना करे, यद्यपि वह भी राज्य की मशीनरी ही होगी, हथियारबंद मज़दूरों के रूप में, जो एक ऐसी मिलिशिया का रूप धारण कर लेते हैं जिसमें सारी जनसंख्या भाग लेती है।

यहां "मात्रा गुण में बदल जाती है": जनवाद की इतनी मात्रा का मतलब होता है पूंजीवादी समाज की सीमाओं का अतिक्रमण, उसके समाजवादी पुनर्निर्माण का आरंभ। यदि राज्य की शासन-व्यवस्था में सब लोग हाथ बंटाने लगें, तो निस्सन्देह पूंजीवाद अपने शिकंजे को क़ायम नहीं रख सकता। फिर पूंजीवाद का विकास वे पूर्वस्थितियां पैदा कर देता है, जिनमें "सब लोग" वास्तव में राज्य के प्रशासन में हाथ बांटने में समर्थ बन जाते हैं। ऐसी कुछ पूर्वस्थितियां ये हैं: सार्विक साक्षरता, जो कई

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिकतम उन्नत पूंजीवादी देशों में पहले ही हासिल हो चुकी है, फिर पोस्ट-ऑफ़िस, रेलों, बड़ी फ़ैक्टरियों, बड़े पैमाने के व्यापार, बैंक के कारोबार, आदि, आदि के विशाल और जटिल समाजीकृत यंत्र द्वारा लाखों मज़दूरों का "प्रशिक्षण और अनुशासन"।

ऐसी **आर्थिक** पूर्वस्थितियों के तहत, यह एकदम संभव है कि पूंजीपतियों और नौकरशाहों का तख़्ता उलटकर उनके स्थान पर फ़ौरन उत्पादन और वितरण के **नियंत्रण** में, श्रम और उपज के **हिसाब-किताब** के काम में, सशस्त्र मज़दूरों को, समस्त सशस्त्र जनता को लगा दिया जाये। (नियंत्रण और हिसाब-किताब के प्रश्न को और वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित इंजीनियरों, कृषि-विशेषज्ञों, आदि के प्रश्न के साथ मिलाना नहीं चाहिये। ये सज्जन आज पूंजीपतियों की आज्ञा का पालन करते हुए काम कर रहे हैं, कल सशस्त्र मज़दूरों की आज्ञा का पालन करते हुए और भी अच्छी तरह काम करेंगे।)

हिसाब-किताब और नियंत्रण – यही **मुख्य बात** है, जिसकी कम्युनिस्ट समाज की **प्रथम अवस्था** की "व्यवस्था" के लिये, उसके उचित रूप से काम करने के लिये ज़रूरत है। **तमाम** नागरिक सशस्त्र मज़दूरों से बने राज्य के वैतनिक कर्मचारी बन जाते हैं। **तमाम** नागरिक एक ही राष्ट्र-व्यापी राजकीय "सिंडीकेट" के कर्मचारी और मज़दूर बन जाते हैं। सारी ज़रूरत यह है कि वे सब बराबर काम करें, उचित मात्रा में काम करें और बराबर तनख़ाह पायें। इसके लिये जिस हिसाब-किताब और नियंत्रण की ज़रूरत होती है, उसे पूंजीवाद ने अत्यधिक **आसान बनाकर** महज़ निरीक्षण और इन्दराज, गणित के चारों नियमों की जानकारी और मुनासिब रसीदों की अदायगी के एकदम सीधे-सादे कामों में बदल दिया है, जिन्हें कोई भी साक्षर व्यक्ति कर सकता है।*

---

* जब राज्य के अधिकांश काम मज़दूरों द्वारा हिसाब-किताब और नियंत्रण तक ही सीमित रह जायेंगे, तो वह "राजनैतिक राज्य" नहीं रह जायेगा, और "सार्वजनिक काम अपना राजनैतिक रूप खो देंगे और व्यवस्था-सम्बन्धी कामों में बदल जायेंगे" (देखिये, ऊपर, अध्याय ४, धारा २ – एंगेल्स का अराजकतावादियों के साथ विवाद)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब जनता की बहुसंख्या स्वतंत्र रूप से सब जगह इस प्रकार का हिसाब-किताब रखने और पूंजीपतियों (जो अब कर्मचारियों में बदल दिये गये होंगे) और पूंजीवादी आदतें बनाये रखनेवाले बुद्धिजीवी सज्जनों के ऊपर इस प्रकार का नियंत्रण रखने का काम करने लगेगी, तो वह नियंत्रण वास्तव में सर्वव्यापक, आम और लोकप्रिय हो जायेगा, और फिर उससे भागने का कोई मार्ग नहीं रह जायेगा, "कहीं जाने की जगह नहीं" रह जायेगी।

पूरा समाज अभिन्न दफ़्तर और अभिन्न फ़ैक्टरी बन गया रहेगा जहां बराबर श्रम और बराबर तनख़ाह का नियम चलेगा।

पर पूंजीपतियों की हार के बाद, शोषकों का तख़्ता उलटने के बाद जिस "फ़ैक्टरीवाले" अनुशासन को सर्वहारा वर्ग सारे समाज में फैलायेगा, वह हरगिज़ हमारा आदर्श अथवा हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। समाज को पूंजीवादी शोषण की गन्दगी और कुरूपता से पूर्ण रूप से साफ़ करने के लिये और आगे की प्रगति के लिये वह सिर्फ़ एक आवश्यक क़दम है।

जिस क्षण समाज के सब सदस्य या कम से कम उसका प्रकांड बहुमत राज्य का स्वयं संचालन करना सीख लेते हैं, इस काम को अपने हाथ में ले लेते हैं, मुट्ठी-भर पूंजीपतियों, पूंजीवादी आदतों को बनाये रखना चाहनेवाले "सज्जनों" और पूंजीवाद द्वारा बुरी तरह आचार-भ्रष्ट कर दिये गये मजदूरों के ऊपर अपना नियंत्रण "क़ायम कर लेते" हैं, — उसी क्षण से हर प्रकार के शासन की ज़रूरत पूर्ण रूप से ख़त्म होना शुरू हो जाती है। जनवाद जितना ही पूर्ण होता है, उतनी ही जल्दी वह क्षण आता है जब वह अनावश्यक हो जाता है। सशस्त्र मजदूरों का "राज्य", जो "शब्द के असली अर्थ में अब राज्य नहीं रह गया है", जितना ही अधिक जनवादी होता है, उतनी ही जल्दी राज्य का प्रत्येक रूप धीरे-धीरे विलुप्त होने लगता है।

कारण यह है कि जब सब लोग प्रशासन करना सीख जायेंगे और वास्तव में स्वतंत्र रूप से सामाजिक उत्पादन का प्रशासन करने लगेंगे, स्वतंत्र रूप से हिसाब-किताब रखने लगेंगे और कामचोरों, "शरीफ़ज़ादों", जालसाज़ों तथा "पूंजीवादी परम्पराओं के" अन्य ऐसे ही "रक्षकों" के ऊपर नियंत्रण रखने लगेंगे, — तब इस राष्ट्र-व्यापी हिसाब-किताब और

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नियंत्रण से वचना अनिवार्यतः इतना कठिन हो जायेगा, ऐसा बिरल अपवाद हो जायेगा और शायद उसके लिए इतनी तेज़ी से और इतनी सख़्त सज़ा दी जायेगी (क्योंकि सशस्त्र मज़दूर व्यावहारिक लोग हैं, भावुक बुद्धिजीवी नहीं हैं और वे किसी को अपने साथ खिलवाड़ करने की इजाज़त नहीं देंगे), कि मानवीय सहजीवन के साधारण, बुनियादी नियमों का पालन करने की आवश्यकता वहुत जल्द एक आदत वन जाएगी।

तव कम्युनिस्ट समाज की प्रथम अवस्था से आगे उसकी उच्चतम अवस्था की ओर वढ़ने का और उसके साथ-साथ राज्य के पूर्ण रूप से विलुप्त हो जाने का द्वार पूरी तरह खुल जायेगा।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्याय ६

अवसरवादियों द्वारा मार्क्सवाद का भ्रष्टीकरण

आम तौर पर क्रान्ति की समस्या की तरह ही सामाजिक क्रान्ति के साथ राज्य के और राज्य के साथ सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध की समस्या पर भी दूसरे इंटरनेशनल (१८८९–१९१४) के मुख्य सिद्धान्तवेत्ताओं और प्रचारकों ने बहुत ही कम ध्यान दिया है। लेकिन अवसरवाद के धीरे-धीरे बढ़ने की प्रक्रिया की, जिसकी वजह से १९१४ में दूसरा इंटरनेशनल ख़त्म हो गया, सबसे ख़ास विशेषता यह थी कि जब यह प्रश्न सामने आया भी, तब उससे मुंह चुराने की कोशिश की गई या उसकी उपेक्षा की गई।

आम तौर से कहा जा सकता है कि राज्य के साथ सर्वहारा क्रान्ति के संबंध के प्रश्न से मुंह चुराने के परिणामस्वरूप ही, जिससे अवसरवाद को लाभ और पोषण प्राप्त होता था, मार्क्सवाद की तोड़-मरोड़ हुई और उसे पूर्ण रूप से भ्रष्ट किया गया।

इस शोकजनक प्रक्रिया को बताने के लिए, चाहे संक्षेप में ही क्यों न हो, हम मार्क्सवाद के सबसे प्रमुख सिद्धान्तवेत्ताओं, प्लेख़ानोव और काउत्स्की को लेंगे।

१. अराजकतावादियों के साथ प्लेख़ानोव का विवाद

प्लेख़ानोव ने समाजवाद के साथ अराजकतावाद के सम्बन्ध पर एक विशेष पुस्तिका लिखी थी, जिसका नाम 'अराजकतावाद और समाजवाद' था और जो १८९४ में जर्मन भाषा में छपी थी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्लेख़ानोव इस विषय पर लिखने में अराजकतावाद के ख़िलाफ़ संघर्ष से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण, तात्कालिक, और राजनैतिक दृष्टि से सबसे आवश्यक प्रश्न, यानी राज्य के साथ क्रान्ति के संबंध के प्रश्न से और राज्य के आम प्रश्न से, बिल्कुल कतरा गये थे! उनकी पुस्तिका के दो प्रमुख भाग हैं: एक ऐतिहासिक और साहित्यिक है, और उसमें स्टर्नर, प्रूदों और दूसरे लोगों के विचारों के इतिहास के सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री है; दूसरा कूपमंडूकतापूर्ण है, जिसमें भद्दे ढंग से इस विषय पर वितर्क किया गया है कि अराजकतावादी और लुटेरे में कोई फ़र्क़ नहीं है।

यह विषयों की दिलचस्प खिचड़ी रूस में क्रान्ति से पूर्व और क्रान्ति के दौरान प्लेख़ानोव की पूरी सरगर्मी के लिए सबसे अधिक लाक्षणिक है, और वास्तव में १९०५ और १९१७ के बीच उन्होंने अपने को राजनीति में पूंजीपति-वर्ग के पीछे घिसटनेवाले अर्ध-मतवादी और अर्ध-कूपमंडूक के रूप में प्रकट कर दिया।

हम देख चुके हैं कि अराजकतावादियों के साथ अपने विवाद में मार्क्स और एंगेल्स ने राज्य के साथ क्रान्ति के सम्बन्ध के विषय में अपने विचारों को किस तरह अधिकतम पूर्णता के साथ स्पष्ट किया था। १८९१ में, मार्क्स की पुस्तक 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' की भूमिका लिखते हुए एंगेल्स ने लिखा था कि "हम लोग"—यानी एंगेल्स और मार्क्स—"उस समय, जब (पहले) इंटरनेशनल[42] की हेग कांग्रेस को हुए मुश्किल से दो वर्ष बीते थे, बकूनिन और उनके अराजकतावादियों के ख़िलाफ़ बेहद ज़बर्दस्त संघर्ष में जुटे हुए थे।"[43]

अराजकतावादियों ने पेरिस कम्यून को "अपना" बताने की, एक तरह से अपने सिद्धांत की सचाई के प्रमाण के रूप में पेश करने की, कोशिश की थी, और उसके सबक़ों और उन सबक़ों की मार्क्स द्वारा की गई व्याख्या को बिलकुल नहीं समझा था। क्या राज्य की पुरानी मशीनरी का ध्वंस आवश्यक है? और उसकी जगह **कौनसी चीज़** ले?—ऐसे ठोस राजनैतिक प्रश्नों के सिलसिले में अराजकतावाद ने कोई ऐसा जवाब नहीं दिया, जो सचाई के कहीं निकट भी पहुंचता हो।

लेकिन राज्य के प्रश्न से पूरी तरह कतराते हुए, कम्यून के पहले और उसके बाद मार्क्सवाद के पूरे विकास को अनदेखा करते हुए

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अराजकतावाद और समाजवाद" की बात करने का लाज़िमी तौर से मतलब था अवसरवाद के दलदल में सरक जाना, क्योंकि अवसरवाद को सबसे अधिक ज़रूरत इसी बात की है कि अभी-अभी बताये गये दो प्रश्नों को क़तई न उठाया जाये। ऐसा होना ही अवसरवाद की जीत है।

२. अवसरवादियों के साथ काउत्स्की का विवाद

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि काउत्स्की की जितनी ज़्यादा पुस्तकों का अनुवाद रूसी भाषा में हुआ है, उतना और किसी भाषा में नहीं। कुछ जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़ाक़ में जो यह कहते हैं कि काउत्स्की को लोग जर्मनी से ज़्यादा रूस में पढ़ते हैं, वह अकारण नहीं है (प्रसंगवश कहें कि इस मज़ाक़ में जितना गहरा ऐतिहासिक महत्त्व छिपा हुआ है, उसका शायद उन लोगों को गुमान भी न होगा जिन्होंने पहले पहल यह मज़ाक़ किया था: रूस के मज़दूरों ने १९०५ में दुनिया के श्रेष्ठतम सामाजिक-जनवादी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की असाधारण रूप से बड़ी और अभूतपूर्व मांग पैदा करके और इन पुस्तकों के अनुवादों और संस्करणों को इतनी बड़ी मात्रा में देश में मंगाकर जितनी कि दूसरे देशों में सुनी भी नहीं गयी, एक प्रकार से, एक अधिक उन्नत पड़ोसी देश के विशाल अनुभव का वृक्ष हमारे सर्वहारा आन्दोलन की युवा भूमि में बहुत तेज़ी से रोप दिया)।

हमारे देश के लोग काउत्स्की को, उनके द्वारा मार्क्सवाद के प्रचार के अलावा, अवसरवादियों और उनके नेता बर्न्सटीन के साथ उनके विवाद के कारण ख़ास तौर से जानते हैं। लेकिन एक बात लगभग एकदम अज्ञात है, जिसे,—अगर हम यह पता लगाना चाहते हैं कि १९१४–१९१५ के महान् संकट के समय काउत्स्की किस तरह एक अत्यंत शर्मनाक भ्रमजाल में फंस गये थे और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों के वकील बन गये थे, तो—हम नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते। वह बात यह है: अवसरवाद के प्रमुख फ़ांसीसी (मिलेरां और जोरेस) और जर्मन (बर्न्सटीन) प्रतिनिधियों के ख़िलाफ़ लिखने के थोड़े ही समय पहले काउत्स्की ने बहुत काफ़ी ढुलमुल-यक़ीनी का परिचय दिया था। १९०१–१९०२ में स्टुटगार्ट से निकलनेवाले

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मार्क्सवादी पत्रिका, 'ज़ार्या'[44] को, जो क्रान्तिकारी-सर्वहारा विचारों की हिमायत करती थी, इस सम्बंध में काउत्स्की के साथ विवाद में उतरना पड़ा था और १९०० में पेरिस के अन्दर हुई अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस में[45] अवसरवादियों के सम्बंध में उनके द्वारा पेश किये गये अनमने, गोलमोल तथा समझौताकारी प्रस्ताव को "लचीला" क़रार देना पड़ा था। जर्मनी में काउत्स्की के जो पत्र प्रकाशित हुए थे, उनसे भी वर्न्सटीन के ख़िलाफ़ मैदान में उतरने से पहले उनकी हिचकिचाहट कुछ कम नहीं ज़ाहिर होती।

लेकिन, इन सबसे कहीं ज़्यादा महत्त्व की बात यह है कि अवसरवादियों के साथ अपने विवाद में ही प्रश्न को सामने रखने और उसपर विचार करने के अपने ढंग में ठीक राज्य के ही प्रश्न पर हम आज अवसरवाद की तरफ़ उनका बाक़ायदा ढुलकाव देखते हैं, जब हम मार्क्सवाद के साथ उनकी सबसे हाल की ग़द्दारी के इतिहास का अध्ययन करते हैं।

अवसरवाद के ख़िलाफ़ काउत्स्की की पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'वर्न्सटीन और सामाजिक-जनवादियों का कार्यक्रम' को लिया जाये। काउत्स्की वर्न्सटीन की एक एक बात को लेकर उसका खण्डन करते हैं, लेकिन इस लाक्षणिक बात पर ध्यान दीजिये।

अपनी हेरोस्ट्रेटसी कुख्यातिवाली पुस्तक 'समाजवाद के आधार-सूत्र' में वर्न्सटीन मार्क्सवाद पर "ब्लांकीवादी" होने का अभियोग लगाते हैं (तब से क्रांतिकारी मार्क्सवाद के प्रतिनिधियों, बोल्शेविकों, के ख़िलाफ़ अवसरवादियों और उदारतावादी पूंजीपतियों द्वारा यह अभियोग रूस में हज़ारों मर्तबा दोहराया जा चुका है)। इस सम्बंध में वर्न्सटीन मार्क्स की पुस्तक 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' पर ख़ास तौर से ब्योरेवार विचार करते हैं और, बिलकुल असफलतापूर्वक—जैसा कि हम देख चुके हैं—यह बताने की कोशिश करते हैं कि कम्यून के सबक़ों के सम्बंध में मार्क्स के विचार प्रूदों के विचारों के समान हैं। मार्क्स के इस निष्कर्ष पर, जिसपर उन्होंने 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की १८७२ की भूमिका में ख़ास ज़ोर दिया था, यानी इस पर कि "मज़दूर-वर्ग राज्य की बनी-बनायी मशीनरी पर ख़ाली क़ब्ज़ा करके उसे अपने काम के लिये नहीं इस्तेमाल कर सकता", वर्न्सटीन ख़ास तौर से ध्यान देते हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस कथन से वर्न्सटीन इतना "प्रसन्न हुए" कि अपनी पुस्तक में उन्होंने उसे तीन वार दोहराया और उसका मतलव अत्यंत तोड़े-मरोड़े अवसरवादी ढंग से लगाया।

जैसा कि हम देख चुके हैं, मार्क्स का मतलव यह था कि मजदूर-वर्ग को राज्य की पूरी मशीनरी को **ध्वंस, नष्ट और छिन्न-भिन्न** कर देना चाहिये (एंगेल्स ने Sprengung, अर्थात् विस्फोट शब्द का प्रयोग किया था)। लेकिन वर्न्सटीन के कथनानुसार मालूम होता है कि इन शब्दों द्वारा मार्क्स ने मजदूर-वर्ग को चेतावनी दी थी कि सत्ता पर क़ब्ज़ा करते समय वह अतिशय क्रांतिकारी जोश में न वह जाये।

मार्क्स के विचार की इससे अधिक भोंडी और घृणित तोड़-मरोड़ की कल्पना नहीं की जा सकती।

फिर, काउत्स्की ने वर्न्सटीन[46] का व्योरेवार खण्डन किस तरह किया?

इस सवाल पर अवसरवाद ने मार्क्सवाद को जिस वुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा है, उसका विश्लेषण उन्होंने नहीं किया। उन्होंने मार्क्स की पुस्तक, 'गृहयुद्ध' की एंगेल्स द्वारा लिखी हुई भूमिका में से ऊपर दिये गये उद्धरण का हवाला दिया और कहा कि मार्क्स के कथनानुसार मजदूर-वर्ग राज्य की **बनी-बनायी** मशीनरी पर **ख़ाली** क़ब्ज़ा नहीं कर सकता, लेकिन आम तौर से कहा जाये तो उसपर क़ब्ज़ा कर सकता है—और वस। काउत्स्की इस बात के बारे में एक शब्द तक नहीं कहते कि जो बात वर्न्सटीन मार्क्स के सिर मढ़ते हैं वह मार्क्स के असली विचारों के विलकुल विपरीत है, कि १८५२ से मार्क्स सर्वहारा क्रान्ति का जो कार्यभार वताते आये थे, वह राज्य की मशीनरी का "ध्वंस" करना था[47]।

नतीजा यह हुआ कि सर्वहारा क्रान्ति के कार्यभारों के सम्वंध में मार्क्सवाद और अवसरवाद के वीच जो सवसे वुनियादी अन्तर है, उसी को काउत्स्की उड़ा गये!

वर्न्सटीन "के ख़िलाफ़" लिखते समय काउत्स्की ने कहा: "सर्वहारा अधिनायकत्व की समस्या के हल को निश्चित होकर हम भविष्य के लिये छोड़ सकते हैं" (पृष्ठ १७२, जर्मन संस्करण)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह वर्न्सटीन के ख़िलाफ़ वितर्क नहीं है, वल्कि वास्तव में, उसको छूट देना है, अवसरवाद के सामने घुटने टेकना है; क्योंकि आजकल अवसरवादी इससे अधिक और कुछ नहीं चाहते कि सर्वहारा क्रांति के कार्यभारों के बारे में तमाम बुनियादी सवालों को "निश्चिन्त" होकर भविष्य के लिये छोड़ दिया जाये"।

१८५२ से १८९१ तक, यानी चालीस वर्ष तक, मार्क्स और एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग को सिखलाया था कि उसे राज्य की मशीनरी का ध्वंस करना चाहिये। फिर भी, १८९९ में जब इस प्रश्न के सम्बंध में मार्क्सवाद के प्रति अवसरवादियों की पूरी ग़द्दारी सामने आयी, तो काउत्स्की ने इस सवाल के स्थान पर कि राज्य की मशीनरी का ध्वंस करना आवश्यक है या नहीं, उसके ध्वंस करने के निश्चित रूपों का सवाल पेश कर दिया और फिर, इस "अकाट्य" (और निष्फल) कूपमंडूकी सत्य की शरण लेने की कोशिश की कि ये निश्चित रूप पहले से नहीं जाने जा सकते!!

मज़दूर-वर्ग को क्रान्ति के लिये तैयार करने के सम्बंध में सर्वहारा पार्टी के कर्त्तव्यों की तरफ़ मार्क्स और काउत्स्की के रुख़ में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है।

आइये, काउत्स्की की अगली, अधिक परिपक्व रचना को ले लें। उसे भी बहुत हद तक अवसरवाद की भूलों के खण्डन के निमित्त ही अर्पित किया गया था। यह रचना 'सामाजिक क्रान्ति' नामक उनकी पुस्तिका है। इस पुस्तिका में लेखक ने "सर्वहारा क्रान्ति" और "सर्वहारा शासन" के प्रश्न को अपना विशेष विषय बनाया है। इसमें उन्होंने बहुत कुछ ऐसा दिया है, जो बेहद उपयोगी है, लेकिन राज्य के प्रश्न को टाल दिया। अपनी पूरी पुस्तिका में लेखक राज्यसत्ता जीतने की ही बात करते हैं—और कुछ नहीं, यानी, वह एक ऐसा गुर चुनते हैं जो अवसरवादियों को उस हद तक छूट देता है, जिस हद तक यह इस संभावना को मान लेता है कि राज्य की मशीनरी को नष्ट किये बिना भी सत्ता पर क़ब्ज़ा किया जा सकता है। काउत्स्की ठीक उसी चीज़ को १९०२ में फिर से जीवित करते हैं, जिसे १८७२ में, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के कार्यक्रम में[48] मार्क्स ने "कालातीत" घोषित कर दिया था।

पुस्तिका में एक विशेष पैराग्राफ़ 'सामाजिक क्रान्ति के रूपों और

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रस्त्र' के बारे में है। उसमें काउत्स्की जन-व्यापी राजनैतिक हड़ताल, गृहयुद्ध ग्रौर "ग्राधुनिक बड़े राज्य की शक्ति के, नौकरशाही ग्रौर फ़ौज जैसे, ग्रस्त्रों" की बात करते हैं, लेकिन कम्यून ने मज़दूरों को जो चीज़ पहले ही सिखा दी थी, उसके बारे में एक शब्द भी नहीं कहते। राज्य के लिये "ग्रंधविश्वासी श्रद्धा" के ख़िलाफ़ एंगेल्स ने जो चेतावनी ख़ास तौर से जर्मनी के समाजवादियों को दी थी, स्पष्ट ही वह ग्रकारण नहीं थी।

काउत्स्की प्रश्न पर इस प्रकार विचार करते हैं: विजयी सर्वहारा वर्ग "जनवादी कार्यक्रम को पूरा करेगा" ग्रौर फिर वह उस कार्यक्रम की धाराएं निर्धारित करते हैं। लेकिन सर्वहारा जनवाद द्वारा पूंजीवादी जनवाद का स्थान लिये जाने के सम्बंध में हमें जो नयी तथ्य-सामग्री सन् १८७१ द्वारा प्राप्त हुई थी, उसके बारे में वह एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालते। काउत्स्की प्रश्न को इस प्रकार की "वज़नी प्रतीत होनेवाली तुच्छ बातों" द्वारा टाल देते हैं:

> "यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं है कि हम वर्त्तमान परिस्थितियों के ग्रन्दर प्रभुत्व नहीं पायेंगे। ख़ुद क्रान्ति में ऐसे देरतलब ग्रौर गहराई तक पहुंचनेवाले संघर्ष की ज़रूरत की पूर्वकल्पना निहित है, जो हमारे वर्त्तमान राजनैतिक ग्रौर सामाजिक ढांचे को बदल देगा।"

निस्सन्देह "यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं है", उसी तरह जिस तरह इस सचाई को कहने की कोई ज़रूरत नहीं है कि घोड़े जई खाते हैं, या यह कि वोल्गा कास्पियन सागर में गिरती है। ग्रफ़सोस की बात सिर्फ़ यह है कि "गहराई तक पहुंचनेवाले" संघर्ष की खोखली ग्रौर भारी-भरकम शब्दावली को क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के ख़ास हित के प्रश्न से—यानी इस प्रश्न से कतराने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया गया है कि राज्य के सम्बंध में, जनवाद के सम्बन्ध में, पहले की ग़ैर-सर्वहारा क्रान्तियों से भिन्न, उसकी क्रान्ति का "गहराई तक पहुंचनेवाला" रूप किस प्रकार ज़ाहिर होता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रश्न से कतराकर वास्तव में काउत्स्की इस सबसे ख़ास बात के सम्बंध में अवसरवाद को छूट दे देते हैं, गोकि शब्दों में वह उसके ख़िलाफ़ भीषण युद्ध की घोषणा करते हैं और "क्रांति के विचार" के महत्त्व पर ज़ोर देते हैं (इस "विचार" का क्या मूल्य हो सकता है, जब वह मज़दूरों को क्रान्ति के ठोस सबक़ पढ़ाने से डरते हैं?), या यह कहते हैं कि "सबसे पहले क्रान्तिकारी विचारवाद" है, या ऐलान करते हैं कि अंग्रेज़ मज़दूर अब "निम्नपूंजीपतियों से अधिक कुछ नहीं हैं"।

> काउत्स्की लिखते हैं: "समाजवादी समाज में अधिकतम विभिन्न रूपों के उद्यम – नौकरशाही (??), ट्रेड-यूनियानी, सहकारी, और निजी... साथ-साथ मौजूद रह सकते हैं"... "मिसाल के लिये ऐसे उद्यम भी हैं, जो नौकरशाही (??) संगठन के बिना नहीं चल सकते, जैसे कि रेलें। यहां जनवादी संगठन निम्नलिखित रूप ले सकता है: मज़दूर अपने प्रतिनिधि चुनें, जिनसे एक प्रकार की संसद बने, जो कार्य सम्बंधी नियम निर्धारित करे और नौकरशाही यंत्र के इन्तज़ाम की देखभाल करे। दूसरे उद्यमों का इन्तज़ाम को ट्रेड-यूनियनों के हाथ में दिया जा सकता है और अन्य उद्यम सहकारी बन सकते हैं" (जेनेवा में १९०३ में प्रकाशित रूसी अनुवाद, पृष्ठ १४८ और ११५)।

यह दलील ग़लत है और कम्यून के सबक़ों को उदाहरण की तरह इस्तेमाल करके मार्क्स और एंगेल्स ने पिछली शताब्दी के आठवें दशक में जो कुछ बतलाया था, उसकी तुलना में यह पीछे ले जानेवाला क़दम है।

जहां तक "नौकरशाही" संगठन की तथाकथित आवश्यकता की बात है, रेलों और बड़े पैमाने के मशीन-उद्योग के किसी भी दूसरे उद्यम – किसी फ़ैक्टरी, बड़े स्टोर, या बड़े पैमाने के पूंजीवादी कृषि-धन्धे – में कोई भी फ़र्क़ नहीं है। इन सारे उद्यमों की तकनीक सख़्त से सख़्त अनुशासन को, दिये गये काम की तामील में हर आदमी द्वारा अधिकतम अचूकता को लाज़िमी बना देती है, वरना पूरा उद्यम ही ठप हो जायेगा, या उसकी मशीनों या तैयार माल को नुक़सान पहुंचेगा। निस्सन्देह, इन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी धन्धों में मज़दूर "अपने प्रतिनिधि चुनेंगे, जो एक प्रकार की संसद बनायेंगे"।

लेकिन असल बात यह है कि यह "एक प्रकार की संसद" पूंजीवादी संसदीय संस्थाओं की तरह की संसद नहीं होगी। असल बात यह है कि यह "एक प्रकार की संसद" केवल "कार्य सम्बंधी नियम निर्धारित और नौकरशाही यंत्र के इन्तज़ाम की देखभाल" ही नहीं करेगी, जैसा काउत्स्की सोचते हैं, जिनकी कल्पना पूंजीवादी संसदीयता के दायरे से आगे नहीं जाती। समाजवादी समाज में मज़दूरों के प्रतिनिधियों की "एक प्रकार की संसद", निस्सन्देह, "कार्य सम्बंधी नियम निर्धारित और यंत्र के इन्तज़ाम की देखभाल करेगी", लेकिन यह यंत्र "नौकरशाही" नहीं होगा। राजनैतिक सत्ता जीतने के बाद, मज़दूर पुराने नौकरशाही यंत्र का ध्वंस कर देंगे, वे उसे समूल नष्ट कर देंगे, वे उसकी जड़ तक बाक़ी नहीं रहने देंगे, और वे उसकी जगह एक नये यंत्र की स्थापना करेंगे, जिसमें वे ही मज़दूर और दफ़्तरों में काम करनेवाले होंगे, जिनके नौकरशाह बन जाने के ख़तरे के ख़िलाफ़ फ़ौरन वे कार्रवाइयां की जायेंगी, जिन्हें मार्क्स और एंगेल्स ने तफ़सील के साथ बताया था: १) उनका न केवल चुनाव होगा, बल्कि उन्हें जब चाहे, तब हटाया भी जा सकेगा; २) उन्हें मज़दूर से ज़्यादा वेतन नहीं मिलेगा; ३) सब के द्वारा नियंत्रण और देख-रेख की व्यवस्था फ़ौरन लागू कर दी जायेगी, ताकि थोड़े समय के लिये सब "नौकरशाह" बन जायें, और इसलिये कोई भी "नौकरशाह" न बन सके।

काउत्स्की ने मार्क्स के इन शब्दों पर ज़रा भी विचार नहीं किया है कि, "कम्यून को संसदीय संस्था न बनकर एक ऐसी कामकाजी संस्था बनना था, जो क़ानून बनानेवाली भी हो और क़ानून लागू करनेवाली भी"[49]।

काउत्स्की ने पूंजीवादी संसदीयता और सर्वहारा जनवाद के फ़र्क़ को बिलकुल नहीं समझा है। पूंजीवादी संसदीयता में जनवाद (जो जनता के लिये नहीं है) और नौकरशाही (जो जनता के ख़िलाफ़ है) साथ साथ होते हैं। सर्वहारा जनवाद नौकरशाही को समूल नष्ट करने के लिये फ़ौरन क़दम उठायेगा और वह इन कार्रवाइयों को अन्त तक,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नौकरशाही के पूर्ण रूप से ख़ात्मे तक, जनता के लिये पूर्ण जनवाद की स्थापना तक, ले जाने में समर्थ होगा।

यहां काउत्स्की राज्य के संबंध में वही पुरानी "अंधविश्वासी श्रद्धा" और नौकरशाही के सम्बंध में "अंधविश्वास" ज़ाहिर करते हैं।

अब हम अवसरवादियों के ख़िलाफ़ काउत्स्की की अन्तिम और उनकी रचनाओं में सबसे अच्छी पुस्तिका, 'सत्ता का मार्ग' को लेंगे (जो, मेरा ख़याल है, रूसी में अनुवादित नहीं हुई है, क्योंकि वह ऐसे समय में, १९०९ में, प्रकाशित हुई थी जब यहां पर घोर प्रतिक्रिया का साम्राज्य था)। यह पुस्तिका काफ़ी आगे तक जाती है, क्योंकि उसमें १८९९ में बर्नस्टीन के ख़िलाफ़ लिखी गयी पुस्तिका की तरह आम क्रान्तिकारी कार्यक्रम की बात नहीं की गयी है, और न वह १९०२ की पुस्तिका 'सामाजिक क्रांति' की तरह बिना इस चीज़ का ख़याल किये हुए कि सामाजिक क्रांति कब होती है, उसके कामों की बात करती है। इसमें उन ठोस परिस्थितियों की बात की गयी है, जो हमें इस बात को मानने के लिये बाध्य कर देती हैं कि "क्रांतिकारी युग" आ रहा है।

वर्ग-विरोधों के आम तौर से तेज़ होने की तरफ़ और साम्राज्यवाद की तरफ़, जिसकी इस सम्बंध में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, लेखक निश्चित रूप से संकेत करते हैं। वह कहते हैं, कि पश्चिमी यूरोप में "१७८९–१८७१ के क्रांतिकारी युग" के बाद, १९०५ में उसी तरह के युग का श्रीगणेश पूर्व में हुआ। विश्व-युद्ध भयावह तेज़ी के साथ पास आ रहा है। "सर्वहारा वर्ग अब अपरिपक्व क्रान्ति की बातें नहीं कर सकता"। "हमने क्रान्तिकारी युग में क़दम रख दिया है"। "क्रान्तिकारी युग शुरू हो रहा है"।

ये घोषणाएं पूरी तरह स्पष्ट हैं। काउत्स्की की यह पुस्तिका इस तुलना के माप का काम दे सकती है कि साम्राज्यवादी युद्ध से पहले जर्मनी के सामाजिक-जनवाद के क्या होने की आशा की जाती थी और युद्ध छिड़ जाने के बाद वह–काउत्स्की समेत–पतन के कितने गहरे गढ़े में जा गिरा। जिस पुस्तिका पर हम विचार कर रहे हैं, उसमें काउत्स्की ने लिखा था, "वर्त्तमान स्थिति में यह ख़तरा है कि हम (यानी, जर्मन सामाजिक-जनवाद) आसानी से उससे भी ज़्यादा नरम लगने लगें, जितने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हम वास्तव में हैं।" सावित यह हुआ कि वास्तव में जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी उससे भी कहीं ज्यादा नरम और अवसरवादी थी, जितनी वह लगती थी!

इसलिये यह बात अधिक लाक्षणिक है कि यद्यपि काउत्स्की ने इस बात की निश्चित रूप से घोषणा कर दी थी कि क्रान्तिकारी युग शुरू हो चुका है, तिस पर भी अपनी इस पुस्तिका में, जिसके बारे में उन्होंने स्वयं कहा था कि उसमें "राजनैतिक क्रांति" का ही विश्लेषण किया गया है, राज्य के प्रश्न से वह फिर बिलकुल कतरा गये।

प्रश्न से इस तरह कतराने, छोड़ देने और टाल जाने का मिल-जुलकर कुल परिणाम अवसरवाद के सामने वह पूर्ण आत्मसमर्पण हुआ, जिसके बारे में हमें अब आगे विचार करना होगा।

काउत्स्की के रूप में जर्मन सामाजिक-जनवाद ने जैसे ऐलान किया था: मैं क्रांतिकारी विचारों को मानता हूं (१८९९)। मैं सर्वहारा वर्ग की सामाजिक क्रान्ति की अनिवार्यता को ख़ास तौर से मानता हूं (१९०२)। मैं मानता हूं कि एक नया क्रांतिकारी युग आ रहा है (१९०९)। फिर भी, मैं उसी बात पर जाता हूं जिसे मार्क्स ने १८५२ में ही कह दिया था, क्योंकि अब राज्य के सम्बंध में सर्वहारा क्रान्ति के कार्यभारों का प्रश्न उठ रहा है, (१९१२)।

पान्नेकोएक के साथ काउत्स्की के विवाद में प्रश्न को बिलकुल इसी रूप में दो-टूक रखा गया था।

३. पान्नेकोएक के साथ काउत्स्की का विवाद

काउत्स्की का विरोध करके, पान्नेकोएक "वामपक्षी आमूलवादी" धारा के एक प्रतिनिधि के रूप में सामने आये, जिसकी पांतों में रोज़ा लुक्ज़ेम्बुर्ग, कार्ल रादेक वग़ैरह भी थे। ये लोग, जो क्रांतिकारी कार्यनीति का समर्थन करते थे, इस विश्वास में एकमत थे कि काउत्स्की "मध्यमार्गी" स्थिति की ओर जा रहे थे, जो ग़ैर-उसूली ढंग से मार्क्सवाद और अवसरवाद के बीच ढुलमुल थी। युद्ध ने इस विचार की सत्यता को पूर्ण रूप से प्रमाणित कर दिया, जब यह "मध्यमार्गी" धारा (जिसे ग़लती

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से मार्क्सवादी कहा जाता था), या "काउत्स्कीवाद" अपने पूरे घृणित रूप में सामने आ गया।

राज्य के प्रश्न पर सरसरी नज़र डालनेवाले अपने लेख, 'जन-संघर्ष और क्रान्ति' में («*Neue Zeit*», १६१२, XXX, २) पान्नेकोएक ने काउत्स्की की स्थिति को "निष्क्रिय आमूलवाद" का रवैया, "चुपचाप इन्तज़ार का सिद्धान्त" बताया था। पान्नेकोएक ने कहा था कि "काउत्स्की क्रान्ति की प्रक्रिया को देखना नहीं चाहते" (पृष्ठ ६१६)। प्रश्न को इस रूप में रखते हुए पान्नेकोएक ने उस विषय को लिया था, जिसमें हमें दिलचस्पी है, यानी राज्य के सम्बंध में सर्वहारा क्रान्ति के कार्यभार।

> उन्होंने लिखा: "सर्वहारा वर्ग का संघर्ष पूंजीपतियों के ख़िलाफ़ महज़ राज्यसत्ता के लिये संघर्ष नहीं है, बल्कि राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष है... सर्वहारा की ताक़त के अस्त्रों की मदद से राज्य की शक्ति के तमाम अस्त्रों को नष्ट करना और मिटाना (Auflösung) सर्वहारा क्रान्ति की अन्तर्य है... इसके फलस्वरूप राज्य के संगठन को पूर्ण रूप से नष्ट कर देने के बाद ही संघर्ष बन्द होगा। अल्पसंख्यक शासकों के संगठन को नष्ट करके बहुसंख्यकों का संगठन तब अपनी वरिष्ठता दिखा चुकेगा" (पृष्ठ ५४८)।

जिस रूप में पान्नेकोएक ने अपने विचारों को रखा था, उसमें भारी ख़ामियां हैं, लेकिन उसका अर्थ फिर भी स्पष्ट है और काउत्स्की ने किस प्रकार उसका खंडन किया, यह ध्यान देने योग्य है।

> उन्होंने लिखा: "अभी तक सामाजिक-जनवादियों और अराजकतावादियों में यही प्रतिकूलता रही है कि सामाजिक-जनवादी राज्यसत्ता को जीतना चाहते थे, जबकि अराजकतावादी उसको नष्ट कर देना चाहते थे। पान्नेकोएक दोनों ही बातें करना चाहते हैं" (पृष्ठ ७२४)।

यद्यपि पान्नेकोएक की व्याख्या में सुस्पष्टता और ठोसपन न होने का दोष है—उनके लेख की उन दूसरी कमियों की बात जाने दीजिये,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिनका वर्त्तमान विषय से कोई सम्बंध नहीं है—फिर भी पान्नेकोएक ने जिस उसूली मसले का उल्लेख किया था, काउत्स्की ने ठीक उसे ही पकड़ा और उसूल के इस बुनियादी मसले पर काउत्स्की ने मार्क्सवादी स्थिति को बिलकुल त्याग दिया और पूरी तरह अवसरवाद के पक्ष में चले गये। सामाजिक-जनवादियों और अराजकतावादियों के भेद की उनकी परिभाषा बिलकुल ग़लत है और उन्होंने मार्क्सवाद को बहुत ही बूरी तरह से तोड़ा-मरोड़ा और भ्रष्ट किया है।

मार्क्सवादियों और अराजकतावादियों के बीच भेद यह है: १) मार्क्सवादी राज्य को पूरी तरह ख़त्म करने का लक्ष्य रखते हैं, लेकिन वे मानते हैं कि वह लक्ष्य समाजवादी क्रांति द्वारा वर्गों का अन्त कर दिये जाने के बाद ही, समाजवाद की—जो राज्य के धीरे-धीरे विलोप का कारण बनता है—स्थापना के परिणामस्वरूप ही, सिद्ध हो सकता है; अराजकतावादी उन परिस्थितियों को नहीं समझते, जिनमें राज्य को ख़त्म किया जा सकता है और राज्य को फ़ौरन ही पूरी तरह ख़त्म कर देना चाहते हैं। २) मार्क्सवादी मानते हैं कि राजनैतिक सत्ता को जीतने के बाद सर्वहारा वर्ग को राज्य की पुरानी मशीनरी को पूर्ण रूप से नष्ट कर देना चाहिये और उसके स्थान पर हथियारबन्द मज़दूरों के संगठन के रूप में, कम्यून की तरह की एक नयी राजकीय मशीनरी की स्थापना करनी चाहिये; अराजकतावादी राज्य की मशीनरी को नष्ट करने की बात पर तो ज़ोर देते हैं, लेकिन उन्हें इस बात की क़तई स्पष्ट कल्पना नहीं है कि उसके स्थान में सर्वहारा वर्ग किस चीज़ की स्थापना करेगा, और अपनी क्रान्तिकारी सत्ता का वह किस प्रकार इस्तेमाल करेगा; अराजकतावादी तो इस बात से भी इनकार करते हैं कि क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को राज्यसत्ता का इस्तेमाल करना चाहिये, यानी वे उसके क्रांतिकारी अधिनायकत्व से इनकार करते हैं। (३) मार्क्सवादी मांग करते हैं कि वर्त्तमान राज्य का इस्तेमाल करके सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के लिये तैयार करना चाहिये; अराजकतावादी इसे अस्वीकार करते हैं।

इस विवाद में काउत्स्की के ख़िलाफ़ पान्नेकोएक ही मार्क्सवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि मार्क्स ने सिखाया था कि सर्वहारा वर्ग इस अर्थ में राज्यसत्ता ही ख़ाली जीत नहीं सकता कि पुराने राज्य का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यंत्र नये हाथों में आ जाए, बल्कि उसे इस यंत्र का ध्वंस करना चाहिये, उसे तोड़ना चाहिये और उसके स्थान पर एक नये यंत्र की स्थापना करनी चाहिये।

काउत्स्की मार्क्सवाद को तिलांजलि देकर अवसरवादियों के शिविर में चले जाते हैं, क्योंकि राज्य की मशीनरी को नष्ट करने की यह बात, जो अवसरवादियों को बिलकुल ही अमान्य है, उनकी दलील से बिलकुल ग़ायब हो जाती है और उसमें वह अवसरवादियों के लिये यह गुंजाइश छोड़ देते हैं कि "विजय प्राप्त करने" का अर्थ केवल बहुमत प्राप्त कर लेना लगाया जा सके।

मार्क्सवाद को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर पेश करने पर पर्दा डालने के लिये काउत्स्की एक पण्डिताऊ ढोंग रचते हैं: वह ख़ुद मार्क्स का ही एक "उद्धरण" पेश करते हैं। १८५० में मार्क्स ने लिखा था कि "राज्य के हाथ में दृढ़ता से सत्ता को केन्द्रित करना"[50] आवश्यक है। और एक विजेता की तरह काउत्स्की पूछते हैं: क्या पान्नेकोएक "केन्द्रीयता" को नष्ट कर देना चाहते हैं?

यह सिर्फ़ उसी तरह की चाल है, जिस तरह केन्द्रीयता के स्थान पर संघवाद के सिलसिले में मार्क्सवाद और प्रूदोंवाद के विचारों को बर्न्सटीन ने एक समान बताया था।

काउत्स्की का "उद्धरण" न घर का, न घाट का है। केन्द्रीयता, राज्य की पुरानी और नयी, दोनों मशीनरियों से संभव है। अगर मज़दूर स्वेच्छा से अपनी सशस्त्र शक्तियों का एकीकरण कर देते हैं, तो वह केन्द्रीयता होगी, लेकिन उसका आधार केन्द्रीकृत राजकीय मशीनरी, स्थायी फ़ौज, पुलिस और नौकरशाही का "पूर्ण रूप से नष्ट हो जाना" ही होगा। कम्यून के संबंध में मार्क्स और एंगेल्स के पूरी तरह सुविदित तर्कों को छोड़कर जब काउत्स्की एक ऐसे उद्धरण को निकाल लाते हैं, जिसका विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो वह सरासर एक जालिये जैसा काम करते हैं।

> काउत्स्की आगे कहते हैं: "... पान्नेकोएक शायद पदाधिकारियों के राजकीय कामों को ख़त्म करना चाहते हैं? लेकिन पदाधिकारियों के बिना तो हमारा काम राजकीय प्रशासन की तो बात ही क्या,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार्टी और ट्रेड-यूनियनों में भी नहीं चलता। हमारा कार्यक्रम यह मांग नहीं करता कि राज्य के पदाधिकारियों को ख़त्म कर दो, वह यह मांग करता है कि वे जनता द्वारा चुने जायें... यहां पर हम प्रशासनिक मशीनरी के उस रूप पर नहीं बहस कर रहे हैं, जो "भविष्य का राज्य" धारण करेगा, बल्कि इस बात पर कि क्या हमारा राजनैतिक संघर्ष राज्यसत्ता को, उसपर हमारे क़ब्ज़ा करने से पहले ही मिटा (शब्दशः घुला – auflöst) देगा" (शब्दों पर काउत्स्की का ज़ोर)। "किस मंत्रालय और उसके अफ़सरों को ख़त्म किया जा सकता है?" इसके बाद शिक्षा, न्याय, वित्त और युद्ध के मंत्रालयों के नाम गिनाये गये हैं। "नहीं, सरकार के ख़िलाफ़ हमारा राजनैतिक संघर्ष इनमें से एक भी मंत्रालय को नहीं हटायेगा... मैं फिर कहता हूं, ताकि ग़लतफ़हमी न हो: यहां पर हम "भविष्य के" राज्य को सामाजिक-जनवाद की विजय द्वारा दिये जानेवाले रूप पर नहीं, बल्कि इस बात पर बहस कर रहे हैं कि हमारा विरोध वर्त्तमान राज्य को किस तरह बदल देगा" (पृष्ठ ७२५)।

यह एक साफ़ चाल है। पान्नेकोएक ने क्रान्ति ही का सवाल उठाया था। उनके लेख के शीर्षक से और ऊपर दिये गये उद्धरणों से भी यह साफ़ ज़ाहिर है। उसे छोड़कर "विरोध" का सवाल उठाकर काउत्स्की क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की जगह अवसरवादी दृष्टिकोण रख देते हैं। जो कुछ वह कहते हैं उसका अर्थ यह है: इस समय हम विरोधी पक्ष हैं, सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के बाद हम क्या होंगे, इसे हम बाद में देखेंगे। क्रान्ति ग़ायब हो जाती है! और ठीक यही अवसरवादी चाहते थे।

बात न विरोध की है और न आम राजनैतिक संघर्ष की, बात है क्रान्ति की। क्रान्ति इसमें निहित है कि सर्वहारा वर्ग "प्रशासनिक मशीनरी" और राज्य की पूरी मशीनरी को नष्ट कर देगा और उसके स्थान पर एक नयी, सशस्त्र मज़दूरों की सत्ता क़ायम करेगा। काउत्स्की "मंत्रालयों" के प्रति एक "अंधविश्वासी श्रद्धा" दिखाते हैं। पर, उनकी जगह पर, मिसाल के तौर पर, विशेषज्ञों की समितियों की स्थापना क्यों नहीं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की जा सकती, जो मज़दूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की प्रभुसत्तापूर्ण और सर्वशक्तिशाली सोवियतों के अधीन काम करें?

बात यह नहीं है कि "मंत्रालय" रहेंगे या "विशेषज्ञों की समितियां", अथवा किसी दूसरी तरह की संस्थाएं क़ायम की जायेंगी। यह बात बिलकुल महत्त्वहीन है। बात यह है कि राज्य की पुरानी मशीनरी (जोकि हज़ारों सूत्रों से पूंजीपति-वर्ग से जुड़ी हुई है और जिसमें बंधे हुए ढर्रे पर चलने की प्रवृत्ति और जड़ता भरी हुई है) क़ायम रहेगी, या नष्ट की जायेगी और उसके स्थान पर एक नयी मशीनरी स्थापित की जायेगी। क्रान्ति इस बात में नहीं निहित है कि नया वर्ग पुरानी राज्य-मशीनरी की मदद से आज्ञा दे, हुकूमत चलाये, बल्कि इस बात में कि वह वर्ग उस मशीनरी का ध्वंस कर दे और एक नयी मशीनरी की मदद से आज्ञा दे, हुकूमत चलाये। काउत्स्की मार्क्सवाद की इस बुनियादी बात को उड़ा जाते हैं या उसे बिलकुल समझते ही नहीं।

पदाधिकारियों के बारे में उनका सवाल साफ़-साफ़ ज़ाहिर कर देता है कि वह कम्यून के सबक़ों और मार्क्स की शिक्षाओं को ज़रा भी नहीं समझते। "पदाधिकारियों के बिना तो हमारा काम पार्टी और ट्रेड-यूनियनों में भी नहीं चलता..."

पूंजीवाद के अंतर्गत, पूंजीपति-वर्ग के शासन में, हम पदाधिकारियों के बिना काम नहीं चला सकते। पूंजीवाद सर्वहारा वर्ग का उत्पीड़न करता है, श्रमजीवी जनता को ग़ुलाम रखता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत जनवाद, जनता की उजरती ग़ुलामी, ग़रीबी और मुसीबतों की तमाम परिस्थितियों द्वारा सीमित, जकड़ा हुआ, कटा-छंटा और विकृत रहता है। यही और केवल यही कारण है कि पूंजीवादी परिस्थितियों द्वारा हमारे राजनैतिक संगठनों और ट्रेड-यूनियनों के पदाधिकारी आचार-भ्रष्ट हो जाते हैं (या यह कहना ज्यादा सही होगा कि वे आचार-भ्रष्ट होने की प्रवृत्ति रखते हैं) और नौकरशाह बनने की, यानी ऐसे विशेषाधिकारी बनने की प्रवृत्ति दिखलाने लगते हैं, जो जनता से कटे होते हैं और जनता से ऊपर होते हैं।

यही नौकरशाही का सार है और जब तक पूंजीपतियों का सम्पत्तिहरण नहीं कर लिया जाता और पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता नहीं उलट

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया जाता, तब तक सर्वहारा वर्ग के पदाधिकारी भी अवश्यम्भावी रूप से किसी न किसी हद तक "नौकरशाह" बन जायेंगे।

काउत्स्की के मतानुसार चूंकि समाजवाद में निर्वाचित पदाधिकारी बाक़ी रहेंगे, इसलिये अफ़सर भी बाक़ी रहेंगे, नौकरशाही भी बाक़ी रहेगी! ठीक यहीं पर उनकी बात ग़लत है। यह दिखाने के लिए कि समाजवाद में पदाधिकारी "नौकरशाह" और "अफ़सर" नहीं रह जायेंगे, मार्क्स ने ठीक कम्यून का ही उदाहरण दिया था; पदाधिकारियों के चुनाव के उसूल के साथ साथ, **ज्यों-ज्यों** उन्हें किसी भी समय हटा लिये जाने का उसूल भी लागू होगा, **ज्यों-ज्यों** उनके वेतन औसत मज़दूर के वेतन की सतह पर लाये जायेंगे, **और ज्यों-ज्यों** संसदीय संस्थाओं के स्थान में ऐसी "कामकाजी संस्थाओं की, जो क़ानून भी बनायेंगी और क़ानूनों को लागू भी करेंगी"[51] स्थापना होती जायेगी, **त्यों-त्यों** उनका नौकरशाह बने रहना भी ख़त्म होता जायेगा।

सार रूप में, काउत्स्की का पान्नेकोएक के ख़िलाफ़ पूरा का पूरा तर्क और विशेष रूप से काउत्स्की की यह अद्भुत बात कि हम अपनी पार्टी और ट्रेड-यूनियन के संगठनों का भी काम पदाधिकारियों के बिना नहीं चला सकते, आम तौर से मार्क्सवाद के ख़िलाफ़ बर्न्सटीन के पुराने "तर्कों" की पुनरावृत्ति मात्र ही है। ग़द्दारी से भरी अपनी पुस्तक, 'समाजवाद के आधार-सूत्र', में बर्न्सटीन "आदिम" जनवाद के विचारों का विरोध करते हैं, उस चीज़ का विरोध करते हैं जिसे वह "मताग्रही जनवाद" कहते हैं: अनिवार्य आदेश, अवैतनिक पदाधिकारी, शक्तिहीन केन्द्रीय प्रतिनिधिमूलक संस्थाएं, आदि। यह साबित करने के लिये कि "आदिम" जनवाद कमज़ोर है, बर्न्सटीन ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनों के अनुभव की उस व्याख्या का ज़िक्र करते हैं, जो वेब-दम्पत्ति ने की है[52]। वे कहते हैं कि मानो "निरपेक्ष स्वतंत्रता के अन्तर्गत" सत्तर वर्ष के विकास (पृष्ठ १३७, जर्मन संस्करण) ने ट्रेड-यूनियनों को क़ायल कर दिया कि आदिम जनवाद बेकार है और उसके स्थान पर उन्होंने साधारण जनवाद, यानी नौकरशाही के साथ संसदीय पद्धति की स्थापना की।

सच बात यह है कि ट्रेड-यूनियनों का विकास "निरपेक्ष स्वतंत्रता के अन्तर्गत" नहीं, बल्कि पूर्ण पूंजीवादी ग़ुलामी के अन्तर्गत हुआ था, जिसके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तर्गत यह मानी हुई बात है कि प्रचलित बुराई, बलप्रयोग, झूठ-फ़रेब, "उच्चतर" प्रशासन के कार्यों से ग़रीब लोगों के अलग रखे जाने, आदि को अनेक रिआयतें देने से "बचा नहीं जा सकता"। समाजवाद में "आदिम" जनवाद को अनिवार्य रूप से काफ़ी हद तक फिर जीवित किया जायेगा, क्योंकि सभ्य समाज के इतिहास में पहली बार आबादी का विशाल जन-समुदाय न केवल मतदान और चुनाव में, बल्कि प्रशासन के रोज़मर्रा के कामों में भी स्वतंत्र रूप से भाग लेने के स्तर तक पहुंचेगा। समाजवाद के अन्तर्गत सब लोग बारी बारी से शासन करेंगे और इस बात के जल्दी ही आदी हो जायेंगे कि कोई भी शासन न करे।

मार्क्स की महान् आलोचनात्मक-विश्लेषणात्मक प्रतिभा ने कम्यून द्वारा की गयी व्यावहारिक कार्रवाइयों में उस नये मोड़ को देख लिया था, जिससे अवसरवादी डरते हैं और जिसे वे नहीं मानना चाहते, क्योंकि वे कायर हैं, क्योंकि वे पूंजीपति-वर्ग से सदा के लिये सम्बंध-विच्छेद करने में आनाकानी करते हैं, और अराजकतावादी उसे या तो जल्दबाजी की वजह से, या महान् सामाजिक परिवर्त्तनों की परिस्थितियों को न समझने की वजह से देखना नहीं चाहते। "हमें पुरानी राज्य-मशीनरी को नष्ट करने की बात भी नहीं सोचनी चाहिये; फिर भला हम मंत्रालयों और पदाधिकारियों के बिना काम चलाने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?"– अवसरवादी, जिसकी रग रग में कूपमंडूकता घुस गयी है और जो असल में न केवल क्रान्ति में, क्रान्ति की सृजनात्मक शक्ति में विश्वास नहीं रखता, बल्कि (हमारे मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की तरह) उसके डर से मरा जा रहा है, इसी तरह तर्क करता है।

"हमें सिर्फ़ राज्य की पुरानी मशीनरी को नष्ट करने की ही बात सोचनी चाहिये; पहले की सर्वहारा क्रान्तियों के ठोस सबक़ों का अध्ययन करना और यह विश्लेषण करना कि जो चीज़ नष्ट कर दी गयी है, उसके स्थान में क्या रखा जायेगा और किस प्रकार रखा जायेगा,– व्यर्थ है", अराजकतावादी (निस्सन्देह अराजकतावादियों में से सर्वश्रेष्ठ, वे नहीं जो श्री क्रोपोत्किन तथा उनकी मंडली के साथ-साथ पूंजीपति-वर्ग के पीछे-पीछे चलते हैं) इस तरह तर्क करता है; इसलिये अराजकतावादियों की कार्यनीति जन-आन्दोलन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसके ठोस सवालों को हल करने की निर्मम साहसी क्रान्तिकारी कोशिश होने के बजाय, निराशा की कार्यनीति बन जाती है।

मार्क्स हमें दोनों तरह की ग़लतियों से बचना सिखाते हैं। वह हमें सिखाते हैं कि राज्य की पुरानी मशीनरी को पूर्ण रूप से नष्ट करने में हमें असीम साहस दिखाना चाहिये, और साथ ही साथ वह हमें सवाल को ठोस रूप में रखना सिखाते हैं: ज़्यादा व्यापक जनवाद स्थापित करने और नौकरशाही को जड़ से उखाड़ने के लिये अमुक अमुक कार्रवाइयां करके कम्यून कुछ ही हफ़्तों के अन्दर एक नयी, सर्वहारा राज्य-मशीनरी का निर्माण शुरू करने में समर्थ हुआ था। कम्यून के वीरों से हमें क्रान्तिकारी साहसिकता सीखनी चाहिये, उनकी व्यावहारिक कार्रवाइयों में हमें वस्तुतः तात्कालिक और फ़ौरन संभव कार्रवाइयों की रूपरेखा देखनी चाहिये, और तब, इस मार्ग पर चलते हुए, हम नौकरशाही को पूर्ण रूप से ख़त्म कर सकेंगे।

इस ख़ात्मे की संभावना की गारंटी इस बात में है कि समाजवाद काम के घंटे कम करेगा, जनता को नये जीवन के उन्नत स्तर पर पहुंचायेगा, आबादी की बहुसंख्या के लिये ऐसी परिस्थितियां पैदा कर देगा जिनमें बिना अपवाद के हरेक इस योग्य होगा कि "राज्य का कारोबार" करने लगे, और इसका परिणाम आम तौर से हर प्रकार के राज्य का धीरे-धीरे पूर्ण रूप से विलोप होगा।

काउत्स्की आगे कहते हैं: "...जन-व्यापी हड़ताल का उद्देश्य राज्यसत्ता को नष्ट करना कभी नहीं हो सकता, उसका केवल यही उद्देश्य हो सकता है कि किसी विशेष सवाल पर सरकार से कुछ सुविधाएं हासिल कर ली जायें, या किसी शत्रुतापूर्ण सरकार को हटाकर उसकी जगह ऐसी सरकार की स्थापना कर दी जाये, जो सर्वहारा की बात को ज़्यादा मानती (entgegenkommende) हो... लेकिन कभी भी, किसी भी हालत में, उसका" (शत्रुतापूर्ण सरकार के ऊपर सर्वहारा वर्ग की विजय का) "परिणाम राज्यसत्ता का विनाश नहीं हो सकता, उसके परिणामस्वरूप सिर्फ़ राज्यसत्ता के अन्दर शक्तियों के संतुलन में थोड़ा-बहुत हेर-फेर (Verschiebung)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो सकता है... अब तक की तरह ही हमारे राजनैतिक संघर्ष का लक्ष्य यही है कि संसद में बहुमत प्राप्त करके और संसद को सरकार का मालिक बनाकर राज्यसत्ता जीत ली जाये" (पृष्ठ ७२६, ७२७, ७३२)।

यह शुद्धतम और निकृष्टतम अवसरवाद के अलावा और कुछ नहीं है, क्रान्ति को शब्दों में मानकर व्यवहार में उसे ठुकराना है। एक ऐसी "सरकार... जो सर्वहारा वर्ग की बात को ज्यादा मानती हो" से आगे काउत्स्की की कल्पना नहीं जाती। १८४७ की तुलना में, जब 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ने "सर्वहारा को शासक वर्ग के रूप में संगठित करने" की बात का ऐलान किया था, यह कूपमंडूकता की ओर पीछे भागना है।

काउत्स्की को अपनी प्रिय "एकता" शीदेमान, प्लेख़ानोव और वैंडरवेल्डे जैसे लोगों के साथ क़ायम करना पड़ेगा जो, सब के सब, ऐसी सरकार की स्थापना के लिये लड़ने के प्रश्न पर एकमत हैं "जो सर्वहारा वर्ग की बात को ज्यादा मानती हो"।

लेकिन हम समाजवाद के इन ग़द्दारों से नाता तोड़ लेंगे और राज्य की पुरानी मशीनरी को पूर्ण रूप से नष्ट करने के लिये लड़ेंगे, ताकि सशस्त्र सर्वहारा ख़ुद ही सरकार बन जाये। इन दोनों बातों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है।

काउत्स्की को लेजियन, डेविड, प्लेख़ानोव, पोत्रेसोव, त्सेरेतेली और चेर्नोव जैसे लोगों के सुखदायी सहयोग का उपभोग करने की पूरी आज़ादी है, जो "राज्यसत्ता के अन्दर शक्तियों के संतुलन में थोड़ा-बहुत हेर-फेर करने" के लिए, "संसद में बहुमत प्राप्त करके और संसद को सरकार का मालिक बनाने" के लिये संघर्ष करने पर राज़ी हैं। बहुत ही ऊंचा उद्देश्य है, जो अवसरवादियों को पूर्ण रूप से मान्य है, और जो हर चीज़ को पूंजीवादी संसदीय जनतंत्र के दायरे के भीतर ही रखता है।

लेकिन हम अवसरवादियों से बिलकुल नाता तोड़ लेंगे और इस लड़ाई में सम्पूर्ण वर्ग-चेतन सर्वहारा वर्ग हमारे साथ होगा—"शक्तियों के संतुलन में थोड़ा-बहुत हेर-फेर करने" के उद्देश्य से नहीं, बल्कि पूंजीपति-वर्ग का तख़्ता उलटने, पूंजीवादी संसदीयता को नष्ट करने के उद्देश्य के लिये,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम्यून की तरह के जनवादी जनतंत्र, या मज़दूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों के जनतंत्र के लिये, सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व के लिये।

* * *

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद की दुनिया में काउत्स्की से भी अधिक दक्षिणपंथी धाराएं हैं, जैसे जर्मनी का 'समाजवादी मासिक'[53] (लेजियन, डेविड, कोल्ब, आदि, और स्कैण्डीनेविया के स्टानिंग और ब्रांटिंग भी उनमें शामिल हैं); फ़्रांस और बेल्जियम में जोरेस के अनुयायी[54] और वैंडरवेल्डे; इतालवी पार्टी[55] के दक्षिणपंथ के प्रतिनिधि तुराती, त्रीव्ज़, आदि; इंगलैंड में फ़ेबियन और "स्वतंत्र"[56] ("स्वतंत्र मज़दूर पार्टी", जो वास्तव में हमेशा उदारतावादियों पर निर्भर रही है), आदि। ये सभी सज्जन, जो अपनी पार्टी के संसद-संबंधी और अख़बारों के काम में बड़ी और अक्सर प्रधान भूमिका अदा करते हैं, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का खुलेआम विरोध करते हैं और बेनक़ाब अवसरवाद की नीति पर चलते हैं। इन सज्जनों की नज़र में सर्वहारा वर्ग का "अधिनायकत्व" जनवाद का "विरोधी" है!! वास्तव में इनमें और निम्नपूंजीवादी जनवादियों में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है।

इस परिस्थिति पर विचार करने के बाद हमारा यह नतीजा निकालना उचित है कि दूसरा इंटरनेशनल, उसके अधिकारी प्रतिनिधियों की विशाल बहुसंख्या, पूर्ण रूप से अवसरवाद में धंस गयी है। कम्यून के अनुभव को न केवल भुला दिया गया है, बल्कि उसे तोड़ा-मरोड़ा गया है। मज़दूरों के दिमाग़ में यह विचार बैठाने के बजाय कि वह समय क़रीब आ रहा है जब उन्हें उठना चाहिये, राज्य की पुरानी मशीनरी का ध्वंस करना चाहिये, और उसकी जगह राज्य की एक नयी मशीनरी क़ायम करनी चाहिये, और इस तरह अपने राजनैतिक शासन को समाज के समाजवादी पुनर्निर्माण का आधार बनाना चाहिये, उन्होंने मज़दूरों को असल में इसका बिलकुल उल्टा ही पाठ पढ़ाया है और "सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने की" बात को इस तरह से चित्रित किया है कि अवसरवाद के लिये उसके अन्दर हज़ारों गुंजाइशें रह गयी हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब वे राज्य, जिनके पास साम्राज्यवादी होड़ के कारण विस्तीर्ण फ़ौजी संगठन हैं, ऐसे फ़ौजी दानवों में बदल गये हैं, जो इस बात का फ़ैसला करने के लिये कि दुनिया में इंगलैण्ड हुकूमत करेगा या जर्मनी, यह वित्तीय पूंजी या वह वित्तीय पूंजी लाखों आदमियों की हत्या कर रहे हैं, ऐसे समय राज्य की ओर सर्वहारा क्रान्ति के रवैये के सवाल को तोड़-मरोड़ कर पेश करने और उसे दबाने-छिपाने की कार्रवाइयों की एक बहुत बड़ी भूमिका होनी लाज़िमी है।*

---

* आगे पाण्डुलिपि इस प्रकार है:

"अध्याय ७

१९०५ और १९१७ की रूसी क्रान्तियों का अनुभव

इस अध्याय के शीर्षक में इंगित विषय इतना विस्तृत है कि उसपर कई किताबें लिखी जा सकती हैं और लिखी जानी चाहिये। इस पुस्तिका में हमें स्वभावतः अनुभव के सबसे महत्त्वपूर्ण उन सबक़ों तक ही अपने को सीमित रखना पड़ेगा, जिनका राज्यसत्ता के सम्बंध में क्रांति के समय सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बंध है।" (यहां पाण्डुलिपि ख़त्म हो जाती है।) — सं०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले संस्करण का उपसंहार

यह पुस्तिका १९१७ के अगस्त और सितम्बर में लिखी गयी थी। अगले, यानी सातवें अध्याय, '१९०५ और १९१७ की रूसी क्रान्तियों का अनुभव', का ख़ाका मैंने वना लिया था। लेकिन मुझे शीर्षक के अलावा अध्याय की एक पंक्ति भी लिखने का समय नहीं मिला: एक राजनैतिक संकट – १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति की पूर्ववेला – ने उसे "बीच में ही रोक दिया"। इस तरह की "रुकावटों" का स्वागत ही किया जा सकता है। लेकिन पुस्तिका के दूसरे भाग ('१९०५ और १९१७ की रूसी क्रान्तियों का अनुभव') का लिखना संभवतः अब बहुत समय के लिये स्थगित करना होगा। "क्रान्ति के अनुभव" से गुज़रना उसके बारे में लिखने से कहीं अधिक सुखदायी और लाभदायक है।

पेत्रोग्राद, लेखक
३० नवम्बर, १९१७

अगस्त – सितम्बर
१९१७ में लिखित;
दूसरे अध्याय की धारा ३
१७ दिसंबर १९१८ से पहले
लिखित;
१९१८ में 'जीज्न इ ज्नानिये'
प्रकाशन गृह द्वारा अलग पुस्तिका
के रूप में प्रकाशित।

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
पांचवां रूसी संस्करण,
खंड ३३, पृष्ठ १–१२०।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टिप्पणियां

1 'राज्य और क्रान्ति' शीर्षक पुस्तक लेनिन ने गुप्त आवास के समय अगस्त और सितम्बर १९१७ के बीच लिखी थी। राज्य के सवाल को सैद्धान्तिक दृष्टि से परिष्कृत करने की आवश्यकता का विचार लेनिन ने १९१६ के उत्तरार्द्ध में व्यक्त किया था। उसी समय भी उन्होंने 'नौजवानों का इन्टरनेशनल' शीर्षक एक छोटा लेख लिखा था जिसमें उन्होंने राज्य के सवाल पर बुख़ारिन के मार्क्सवाद-विरोधी दृष्टिकोण का खण्डन किया था और राज्य के प्रति मार्क्सवाद की स्थिति पर तफ़सील के साथ एक लेख लिखने का वचन दिया था। १७ फ़रवरी १९१७ को, अ० मि० कोलोन्ताई के नाम अपने पत्र में लेनिन ने लिखा कि राज्य के प्रति मार्क्सवाद की स्थिति पर सामग्री लगभग तैयार है। यह सामग्री उन्होंने नीले कवरवाली एक कापी में बारीक लिखावट में लिखी थी और शीर्षक दिया था: 'राज्य के बारे में मार्क्सवाद का दृष्टिकोण'। कापी में कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स की रचनाओं से उद्धरण और साथ ही लेनिन की आलोचनात्मक टिप्पणियों, परिणामों और निष्कर्षों के साथ काउत्स्की, पान्नेकोएक और बर्न्सटीन की पुस्तकों में से अंश दिये गये थे।

'राज्य और क्रान्ति' शीर्षक पुस्तक की रूप-रेखा के अनुसार उसमें सात अध्याय लिखे जाने थे परन्तु उसका अन्तिम अध्याय—'१९०५ और १९१७ की रूसी क्रान्तियों का अनुभव'—नहीं लिखा गया। हमारे पास इस अध्याय की केवल सविस्तार योजना मौजूद है। पुस्तक के प्रकाशन के बारे में लेनिन ने प्रकाशक के नाम अपने एक नोट में लिखा कि यदि "सातवां अध्याय समाप्त करने में बहुत देर लग जाये या यदि वह

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकार में बहुत बड़ा बन जाये तो पहले छः अध्यायों को पुस्तक के प्रथम भाग के रूप में अलग प्रकाशित कर दिया जाये..."

पाण्डुलिपि के मुखावरण पर लेखक ने अपना छद्मनाम "फ़० फ़० इवानोव्स्की" लिखा। लेनिन का इरादा था कि किताब को इस छद्म नाम से छापा जाये क्योंकि यदि ऐसा न करते तो अस्थायी सरकार उसे ज़ब्त कर देती। किताब १९१८ तक प्रकाशित नहीं हो पायी और तब छद्म नाम की ज़रूरत नहीं रही थी। पुस्तक का दूसरा संस्करण जिसमें एक नया अंश—'मार्क्स ने १८५२ में प्रश्न को किस तरह पेश किया था'—जिसे लेनिन ने दूसरे अध्याय के साथ जोड़ दिया था, १९१९ में प्रकाशित किया गया।—मुखपृष्ठ

[2] फ़ेबियन—फ़ेबियन सोसायटी, ब्रिटिश सुधारवादी संस्था के सदस्य। स्थापना-काल—१८८४। सोसायटी का नाम रोम के सेनापति फ़ेबियस मकसीमस (तीसरी सदी, ईसा पूर्व) के नाम पर रखा गया जिसे कनक्टेटर (विलम्बकारी) कहा जाता था। यह सेनापति अपनी विलम्बकारी कार्यनीति और हानीबाल के विरुद्ध जंग में निर्णायक लड़ाइयों को टाल जाने के लिए प्रसिद्ध था। फ़ेबियन सोसायटी के सदस्य मुख्यतः पूंजीवादी बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि थे—वैज्ञानिक, लेखक, राजनीतिज्ञ (सि० और बी० वेब, ब० शॉ०, रै० मैकडानल्ड, इत्यादि)। फ़ेबियन लोग सर्वहारा वर्ग के संघर्ष और समाजवादी क्रान्ति की आवश्यकता से इनकार करते थे। उनका मत था कि केवल छोटे छोटे सुधारों और समाज के क्रमशः रूपान्तरण द्वारा पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण संभव है। व्ला० इ० लेनिन ने फ़ेबियनों को "उग्र अवसरवाद की एक प्रवृत्ति" का नाम दिया था। १९०० में फ़ेबियन सोसायटी लेबर पार्टी में शामिल हो गयी। "फ़ेबियन समाजवाद" लेबर विचारधारा के स्रोतों में से एक है।

पहले विश्वयुद्ध (१९१४–१९१८) के दौरान फ़ेबियनों ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी।—पृ० ५

[3] देखिये: फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति'।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीचे, इस पुस्तक के ११,१३ – १८ पृष्ठों पर लेनिन इसी रचना में से उद्धरण देते हैं। – पृ० ६

[4] समाजवादी-क्रान्तिकारी – रूस की एक निम्नपूंजीवादी पार्टी जिसकी स्थापना १६०१ के अन्त और १६०२ के शुरू में, विभिन्न नरोदवादी दलों और मण्डलों के मिलाप के फलस्वरूप हुई। पहले विश्वयुद्ध में अधिकांश समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने सामाजिक-अन्धराष्ट्रवाद का दृष्टिकोण अपनाया।

१६१७ में फ़रवरी पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद, मेन्शेविकों के साथ, समाजवादी-क्रान्तिकारी, पूंजीवादी अस्थायी सरकार के मुख्य आधार बने, और उनकी पार्टी के नेता (केरेन्स्की, अव्क्सेन्त्येव, चेर्नोव) उसके सदस्य बने।

समाजवादी-क्रान्तिकारियों की पार्टी ने ज़मींदारों की भूसम्पत्ति के उन्मूलन की किसानों की मांग नामंजूर कर दी और उसे बरक़रार रखने की मांग पेश की। अस्थायी सरकार के समाजवादी-क्रांतिकारी मंत्रियों ने उन किसानों के विरुद्ध ताज़ीरी दस्ते भेजे, जिन्होंने ज़मींदारों की भूमि का अपहरण किया। सशस्त्र अक्तूबर विद्रोह के ठीक पहले पार्टी ने पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थन करते हुए, खुले तौर पर प्रतिक्रान्तिकारी पूंजीवाद का पक्ष लिया और इस तरह क्रान्तिकारी जनता से अलग हो गई।

नवम्बर १६१७ के अन्त में समाजवादी-क्रान्तिकारियों के वाम पक्ष ने वामपंथी समाजवादी-क्रान्तिकारियों की एक स्वतंत्र पार्टी की स्थापना की। किसान जनता में अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए, वामपंथी समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने औपचारिक रूप से सोवियत सत्ता को मान्यता दी और बोल्शेविकों के साथ समझौता किया, परन्तु वे शीघ्र ही सोवियत सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने लगे।

विदेशी फ़ौजी दख़लन्दाज़ी और गृहयुद्ध के काल में समाजवादी-क्रान्तिकारी प्रतिक्रान्तिकारी तोड़-फोड़ की कार्रवाइयां करते रहे, उन्होंने सक्रिय रूप से दख़लन्दाज़ों और श्वेत गार्डों की मदद की, वे प्रतिक्रान्तिकारी साज़िशों में भाग लेते रहे, और सोवियत राज्य तथा कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं के विरुद्ध आतंकवादी कार्रवाइयां करते रहे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गृहयुद्ध के वाद उन्होंने अपनी सोवियत विरोधी सरगर्मियों को देश के अन्दर और उत्प्रवासी श्वेत गार्डों के बीच जारी रखा। –पृ० १०

[5] **मेन्शेविक** – रूसी सामाजिक-जनवाद में निम्नपूंजीवादी अवसरवादी रुझान के समर्थक, मज़दूर-वर्ग पर पूंजीवादी प्रभाव के संवाहक। यह नाम उन्हें अगस्त १९०३ में, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस के वाद दिया जाने लगा जव वे कांग्रेस के अन्त पर, पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं के चुनाव के समय अल्पमत (रूसी में 'मेन्शिन्स्त्वो') में रह गये, और लेनिन के नेतृत्व में क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवादियों ने बहुमत (रूसी में 'बोल्शिन्स्त्वो') ग्रहण किया; इसी समय से बोल्शेविक और मेन्शेविक नाम पड़ गये।

मेन्शेविक पूंजीपति-वर्ग और सर्वहारा के बीच समझौता करवाने की कोशिश करते थे, उन्होंने मज़दूर-आन्दोलन में अवसरवादी प्रवृत्ति अपनाई। १९१७ की फ़रवरी पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद मेन्शेविक समाजवादी-क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर अस्थायी सरकार के अंग वन गये, उन्होंने उसकी साम्राज्यवादी नीति का समर्थन किया और वढ़ती हुई सर्वहारा क्रान्ति के विरुद्ध संघर्ष किया।

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद मेन्शेविक खुल्लमखुल्ला एक प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी वन गये, ऐसे षड्यन्त्रों और विद्रोहों को संगठित करने और उनमें भाग लेने लगे, जिनका उद्देश्य सोवियत सत्ता का तख़्ता उलटना था। –पृ० १०

[6] **समाज का गोत्रात्मक या क़बायली संगठन** – आदिम सामुदायिक व्यवस्था या मानवजाति के इतिहास में पहला सामाजिक-आर्थिक गठन। क़वायली कम्यून आर्थिक तथा सामाजिक संबंधों से जुड़े रुधिर-संबंधियों का समुदाय था। क़बायली व्यवस्था मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक कालों से गुज़री। पितृसत्ता की परिणति आदिम समाज के वर्ग-समाज वनने और राज्य के उदय में हुई। आदिम सामुदायिक व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन-संबंध उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व और उत्पादों के समतावादी वितरण पर आधारित थे। यह मुख्यतः उस समय की उत्पादक शक्तियों के निम्न स्तर और उनके चरित्र के अनुरूप था। –पृ० ११

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[7] देखिये : कार्ल मार्क्स, 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' (अध्याय ४) और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' तथा अ० बेबेल के नाम फ़्रे० एंगेल्स का पत्र (१८–२८ मार्च, १८७५)। – पृ० २३

[8] देखिये : कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खण्ड १। – पृ० २३

[9] तीसवर्षीय युद्ध (१६१८–१६४८) – यूरोपीय राज्यों के विभिन्न संश्रयों के बीच विरोधों के तीव्र होने से जनित पहला आम यूरोपीय युद्ध, जिसने प्रोटेस्टेंटों और कैथोलिकों के बीच संघर्ष का रूप ले लिया। जर्मनी इसका मुख्य युद्धक्षेत्र और सैनिक लूटमार तथा विजेताओं के दावों का भाजन बन गया। युद्ध १६४८ में वेस्टफ़ालिया की शांति-संधि होने के साथ ख़त्म हुआ, जिसने जर्मनी के राजनैतिक विभाजन की पुष्टि की। – पृ० २४

[10] गोथा कार्यक्रम – १८७५ की गोथा कांग्रेस में जर्मनी की समाजवादी मज़दूर पार्टी द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम। तब तक स्वतंत्र रूप से विद्यमान आयज़ेनाख़वादी (अ० बेबेल और वि० लीब्कनेख़्त इसके नेता थे और इनपर मार्क्स तथा एंगेल्स का सैद्धांतिक प्रभाव था) और लासालवादी पार्टियां इस कांग्रेस में आपस में मिलकर एक पार्टी बन गयीं। यह कार्यक्रम सर्वसंग्रहवादी और अवसरवादी था, क्योंकि आयज़ेनाख़वादियों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर लासालवादियों को रियायतें दी थीं और लासालवादी सूत्र स्वीकृत किये थे। का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने गोथा कार्यक्रम के मसौदे की कटु आलोचना की और उसे आयज़ेनाख़वादियों के १८६९ के कार्यक्रम की तुलना में एक क़दम पीछे माना। – पृ० २५

[11] उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारंभ में कई देशों में पूंजीपति-वर्ग के शासक तत्त्वों को कपटपूर्ण चालें अपनानी पड़ीं। मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में फूट डालने और सर्वहारा को क्रांतिकारी संघर्ष से हटाने की कोशिश में उन्होंने छोटी-छोटी रियायतें देने की नीति अपनाई और समाजवादी पार्टियों के कुछ सुधारवादी नेताओं को पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी सरकारों में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। १८९२

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में जॉन वर्न्स ब्रिटिश संसद के सदस्य चुने गये, जिन्हें लेनिन ने "मंत्रि पद की ख़ातिर अपने को पूंजीपति-वर्ग को बेच देनेवाले मज़दूर-वर्ग के घोरतम ग़द्दारों" में एक बताया था। १८९९ में समाजवादी अलेक्सान्द्र एत्येन मिलेरां वाल्देक-रूसो की फ़्रांसीसी पूंजीवादी सरकार में शामिल हुए और अपनी नीति लागू करने में पूंजीपति-वर्ग की सहायता की। पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी सरकार में मिलेरां के भाग लेने से फ़्रांस के मज़दूर-आन्दोलन को बहुत नुक़सान पहुंचा। लेनिन ने मिलेरांवाद का चरित्रचित्रण करते हुए उसे विश्वासघात और संशोधनवाद कहा है। इटली में, बीसवीं सदी के प्रारंभ में, सरकार के साथ सहयोग करने के सबसे खुले समर्थकों में लियोनीद विसोलाती, इवानोए बोनोमी तथा अन्य समाजवादी थे, जिन्हें १९१२ में समाजवादी पार्टी से निकाल दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के ज़माने में कई सामाजिक-जनवादी पार्टियों के दक्षिणपंथी अवसरवादी नेताओं ने खुले तौर पर सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रवैया अपनाया, वे अपने-अपने देशों की पूंजीवादी सरकारों में शामिल हुए और उनकी नीति के वाहक वन गये। —पृ० २८

[12] रूस में पूंजीवादी-जनवादी क्रांति (२७ फ़रवरी [१२ मार्च], १९१७) के फलस्वरूप निरंकुश शासन का तख़्ता उलट दिया गया और पूंजीवादी अस्थायी सरकार स्थापित की गई। —पृ० ३४

[13] कैडेट — सांविधानिक-जनवादी पार्टी — रूस में उदारतावादी-राजतन्त्रवादी पूंजीपति-वर्ग की प्रमुख पार्टी — के सदस्य। यह पार्टी अक्तूबर १९०५ में क़ायम की गयी। इसमें पूंजीपति-वर्ग, ज़ेम्सत्वोवादी ज़मींदारों और पूंजीवादी बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि शामिल थे। फ़रवरी की पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के दौरान उन्होंने राजतन्त्र को बचाने की कोशिश की। पूंजीवादी अस्थायी सरकार में प्रमुख पदों पर आसीन, कैडेटों ने संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन और फ़्रांस के साम्राज्यवादियों के हित में जनता-विरोधी, प्रतिक्रान्तिकारी नीति अपनायी। महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय के बाद वे सोवियत सत्ता के जानी दुश्मन वन गये,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सशस्त्र प्रतिक्रान्तिकारी कार्रवाइयों और विदेशी दख़लन्दाज़ों के सभी हमलों में उन्होंने भाग लिया। दख़लन्दाज़ों तथा श्वेत गार्डवालों की पराजय के बाद, उत्प्रवास-काल में, कैडेटों ने अपनी सोवियत-विरोधी, प्रतिक्रान्तिकारी सरगर्मियां जारी रखीं।—पृ० ३४

[14] *«Die Neue Zeit»* (नया ज़माना) जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी की सैद्धान्तिक पत्रिका; यह स्टुटगार्ट से १८८३ और १९२३ के बीच प्रकाशित होती रही। अक्तूबर १९१७ तक इसका प्रकाशन का० काउत्स्की और बाद में ग० कूनोव करते रहे। *«Die Neue Zeit»* में पहली बार कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स की कुछेक रचनाएं प्रकाशित हुईं। एंगेल्स बराबर सम्पादक-मण्डल को परामर्श दिया करते और अक्सर पत्रिका में सम्पादक-मण्डल की ओर से किये जानेवाले मार्क्सवाद के अतिक्रमण की आलोचना किया करते थे। १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक के उत्तरार्द्ध में, एंगेल्स की मृत्यु के बाद, पत्रिका में नियमित रूप से संशोधनवादियों के लेख छपने लगे थे। इन्हीं में बर्न्सटीन द्वारा लिखित 'समाजवाद की समस्याएं' शीर्षक लेखमाला भी शामिल थी, जिसमें मार्क्सवाद के ख़िलाफ़ एक संशोधनवादी आन्दोलन शुरू किया गया था। पहले विश्वयुद्ध के काल में (१९१४—१९१८) *«Die Neue Zeit»* ने मध्यमार्गी स्थिति अपनायी और वास्तव में सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादियों का समर्थन किया।—पृ० ३८

[15] आशय 'यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ के सदस्यों के नाम फ़्रांसीसी-प्रशियाई युद्ध के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ की जनरल कौंसिल की दूसरी घोषणा' से है, जो मार्क्स द्वारा सितंबर ६—९, १८७० में लंदन में लिखी गयी थी।—पृ०४१

[16] देखिये: लु० कुगेलमन के नाम कार्ल मार्क्स का पत्र (१२ अप्रैल, १८७१)।—पृ० ४१

[17] देखिये: कार्ल मार्क्स, 'फ़्रांस में गृहयुद्ध'। नीचे, इस पुस्तक के पृष्ठ ५१, ५७—६३ पर लेनिन इसी रचना में से उद्धरण देते हैं।—पृ० ४८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[18] 'देलो नरोदा' ('जनता का ध्येय') – दैनिक अख़बार, समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी का मुखपत्र; मार्च १९१७ से जुलाई १९१८ तक पेत्रोग्राद से प्रकाशित होता रहा; इसका नाम बार-बार बदलता रहा। अक्तूबर १९१८ में यह अख़बार समारा से प्रकाशित होने लगा (चार अंक प्रकाशित हुए) और मार्च १९१९ में मास्को से दस अंक निकले। अख़बार की प्रतिक्रान्तिकारी सरगर्मियों के कारण इसे बन्द कर दिया गया। – पृ० ५३

[19] हेरोस्ट्रेटस – एक यूनानी, जिसने आनेवाली पीढ़ियों में प्रसिद्धि पाने के लिए ३५६ ई० पू० में एफ़ेसस नगर में आर्तेमिस के मंदिर में आग लगा दी थी। – पृ० ५८

[20] जिरौंदवादी – १८वीं शताब्दी के अंत में फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के काल में पूंजीपतियों के राजनैतिक दल का नाम। जिरौंदवादी नरम पूंजीपतियों के हित अभिव्यक्त करते थे और क्रान्ति तथा प्रतिक्रांति के बीच डगमगाते रहते थे। उनकी नीति राजतंत्र के साथ सौदेबाज़ी की थी। – पृ० ६१

[21] देखिये : फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'रिहायशी समस्या'। नीचे, इस पुस्तक के पृष्ठ ६५–६७ पर लेनिन इसी रचना में से उद्धरण देते हैं। – पृ० ६५

[22] ब्लांकीवाद – फ़्रांसीसी समाजवादी आंदोलन की एक प्रवृत्ति। विख्यात क्रांतिकारी और फ़्रांसीसी कल्पनावादी कम्युनिज़्म के प्रसिद्ध प्रतिनिधि लुई ओग्यूस्त ब्लांकी (१८०५–१८८१) इसके नेता थे। क्रान्तिकारी पार्टी की गतिविधियों का स्थान षड्यंत्रकारियों के एक गुट को देते हुए उन्होंने वस्तुस्थिति पर ध्यान नहीं दिया जो कि विद्रोह की विजय के लिए अत्यावश्यक है। उन्होंने जन-समुदाय के साथ संपर्क की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। – पृ० ६६

[23] प्रूदोंवाद – निम्नपूंजीवादी समाजवाद की एक अवैज्ञानिक, मार्क्सवाद विरोधी प्रवृत्ति। फ़्रांसीसी अराजकतावादी और इस प्रवृत्ति के एक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्धांतकार प्रूदों के नाम पर इसका नाम पड़ा। निम्नपूंजीवादी दृष्टिकोण से बड़ी पूंजीवादी संपत्ति की आलोचना करते हुए प्रूदों ने छोटी निजी संपत्ति के चिर स्थायित्व का सपना देखा और "जनता" और "विनिमय" बैंकों के ऐसे संगठन का सुझाव दिया, जिनकी सहायता से मज़दूर गोया स्वयं अपने उत्पादन-साधन प्राप्त करेंगे, दस्तकार बन जायेंगे और अपने माल की "न्यायपूर्ण" बिक्री सुनिश्चित करा लेंगे। प्रूदों सर्वहारा की ऐतिहासिक भूमिका समझ न पाया और उसने वर्ग-संघर्ष, सर्वहारा क्रांति तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण अपनाया। अराजकतावादी दृष्टिकोण से उसने राज्य की आवश्यकता अस्वीकार की। पहले इन्टरनेशनल पर अपने दृष्टिकोण लादने के प्रूदों के प्रयत्नों के विरुद्ध मार्क्स और एंगेल्स ने सतत संघर्ष किया। मार्क्स कृत 'दर्शन की दरिद्रता' में प्रूदोंवाद की कठोर आलोचना की गयी थी। मार्क्स, एंगेल्स और उनके अनुयायियों द्वारा छेड़े गये निश्चयपूर्ण संघर्ष के फलस्वरूप पहले इंटरनेशनल में मार्क्सवाद ने प्रूदोंवाद पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली।

लेनिन ने प्रूदोंवाद को मज़दूर-वर्ग का दृष्टिकोण समझ सकने में असमर्थ "फ़िलीस्तीन की कूपमंडूकता" की संज्ञा दी थी। पूंजीवादी "सिद्धांतकारों" द्वारा वर्गों की लयबद्धता के प्रचार में प्रूदों के विचारों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता था।–पृ० ६७

[24] लेनिन यहां कार्ल मार्क्स के लेख *«L'indifferenza in materia politica»* (राजनैतिक उदासीनतावाद) और फ़्रेडरिक एंगेल्स के लेख *«Dell' Autoria»* ('अधिकार के बारे में') का उल्लेख कर रहे हैं, जो दिसंबर, १८७३ में इतालवी भाषा में *«Almanacco Republicano per l'anno 1874»* (१८७४ के जनतांत्रिक लेख-संग्रह) में प्रकाशित हुए थे। इनका जर्मन अनुवाद १९१३ में *«Die Neue Zeit»* (नया जमाना) में प्रकाशित हुआ था।–पृ०६७

[25] कार्ल मार्क्स, 'राजनैतिक उदासीनतावाद'।–पृ०६८

[26] फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'प्राधिकार के बारे में'।–पृ०६९

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[27] फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'प्राधिकार के बारे में'।–पृ० ७१

[28] देखिये : कार्ल मार्क्स, 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना'।–पृ० ७३

[29] आशय कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित 'दर्शन की दरिद्रता' से है।–पृ०७३

[30] जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी का एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम अक्तूबर १८९१ की एर्फ़ुर्ट कांग्रेस में स्वीकृत किया गया था। गोथा कार्यक्रम (१८७५) की तुलना में यह एक क़दम आगे था। यह पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति के अनिवार्य विनाश और समाजवादी उत्पादन-पद्धति द्वारा उसके स्थानग्रहण से संबंधित मार्क्सवादी सिद्धांत पर आधारित था। एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम में मज़दूर-वर्ग द्वारा राजनैतिक संघर्ष के छेड़े जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया था, उक्त संघर्ष के नेता के नाते पार्टी की भूमिका स्पष्ट की गयी थी। पर एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम में अवसरवाद के लिए गंभीर रिआयतें मौजूद थीं। फ़्रेडरिक एंगेल्स ने '१८९१ के सामाजिक-जनवादी कार्यक्रम के मस्विदे की आलोचना के सम्बन्ध में' नामक अपने लेख में एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम के मस्विदे की कड़ी आलोचना की। सारतः यह समूचे दूसरे इंटरनेशनल के अवसरवाद की आलोचना थी। लेकिन जर्मन सामाजिक-जनवाद के नेताओं ने एंगेल्स द्वारा की गयी आलोचना पार्टी के साधारण सदस्यों से छिपाये रखी और जब कार्यक्रम का अंतिम पाठ तैयार किया गया उस समय एंगेल्स के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निरूपणों पर भी ध्यान नहीं दिया। लेनिन के अनुसार एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम की मुख्य त्रुटि–अवसरवाद को दी गयी भीरुतापूर्ण रिआयतें–इस तथ्य में निहित थी कि उसने सर्वहारा अधिनायकत्व के संबंध में कुछ भी नहीं कहा।–पृ०७६

[31] **समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून** जर्मनी में बिस्मार्क की सरकार द्वारा मज़दूर और समाजवादी आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से १८७८ में लागू किया गया था। इस क़ानून के मुताबिक़ सामाजिक-जनवादी पार्टी के सभी संगठनों, आम मज़दूर संगठनों तथा मज़दूरों के अख़बारों और पत्रिकाओं का दमन किया गया। समाजवादी साहित्य को ज़ब्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया गया। इस क़ानून के अन्तर्गत सामाजिक-जनवादी संगठनों को भंग किया गया, और सामाजिक-जनवादियों को देश-निकाला दिया गया और उन्हें जेल में डाल दिया गया था। परन्तु इन दमनकारी कार्रवाइयों से सामाजिक-जनवादी पार्टी हतोत्साह नहीं हुई और वह अपनी सरगर्मियां गुप्त रूप से करने लगी। पार्टी का मुखपत्र, 'सोत्सिअल-देमोक्रात' विदेश से छपने लगा और पार्टी की कांग्रेसें बाक़ायदे (१८८०, १८८३ और १८८७ में) आयोजित की जाती रहीं। जर्मनी में ग़ैर-क़ानूनी केन्द्रीय समिति के नेतृत्व में, सामाजिक-जनवादी संगठन और दल, बड़ी तेज़ी से अपनी सरगर्मियां गुप्त रूप से फिर से शुरू करने लगे। साथ ही उसी समय पार्टी ने जनता से अपने सम्पर्क मज़बूत बनाने के लिए विस्तृत स्तर पर क़ानूनी संभावनाओं का उपयोग किया। पार्टी का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था: १८७८ से १८९० तक की अवधि में जर्मन राइख़स्टाग के चुनावों में सामाजिक-जनवादियों के पक्ष में डाले गये वोटों की संख्या तिगुनी से अधिक बढ़ गयी थी। कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स ने जर्मनी के सामाजिक-जनवादियों की बड़ी मदद की। १८९० में, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मज़दूर-आन्दोलन के दबाव से, समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून रद्द कर दिया गया। – पृ० ७८

[32] 'प्राव्दा' (सत्य) – दैनिक क़ानूनी बोल्शेविक अख़बार जिसका पहला अंक पीटर्सबर्ग से २२ अप्रैल (५ मई) १९१२ में निकला।

लेनिन ने 'प्राव्दा' का सैद्धान्तिक पथ-प्रदर्शन किया; वह लगभग हर रोज़ इसके लिए कुछ न कुछ लिखते, इसके सम्पादक-मण्डल को परामर्श देते, और उसके जुझारू, क्रान्तिकारी स्वरूप को बनाये रखने की कोशिश करते।

पुलिस लगातार 'प्राव्दा' के पीछे पड़ी रही। ८(२१) जुलाई, १९१४ को अख़बार का प्रकाशन बन्द कर दिया गया।

केवल फ़रवरी की पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद ही, ५(१८) मार्च, १९१७ को 'प्राव्दा' का प्रकाशन रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केन्द्रीय तथा पीटर्सबर्ग समितियों के मुखपत्र के रूप में जारी किया गया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूस में लौटने पर लेनिन ने 'प्राव्दा' के सम्पादक-मण्डल की अध्यक्षता ग्रहण की और 'प्राव्दा' ने पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति में रूपांतरण की लेनिन की योजना के लिए संघर्ष शुरू किया।

जुलाई और अक्तूबर, १९१७ के दौरान, प्रतिक्रान्तिकारी अस्थायी सरकार ने बार-बार इसका दमन किया, इसलिए 'प्राव्दा' को बार-बार अपना नाम बदलना पड़ा। वह 'लिस्तोक 'प्राव्दि'' (सत्य का पन्ना), 'प्रोलेतारी' (सर्वहारा), 'राबोची' (मज़दूर), 'राबोची पूत' (मज़दूरों का मार्ग) के नामों से प्रकाशित होता रहा। महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय के बाद, २७ अक्तूबर (९ नवम्बर), १९१७ से वह अपने मौलिक नाम—'प्राव्दा'—से छपने लगा।—पृ० ८३

33 देखिये: फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' की भूमिका'।—पृ० ८४

34 यहां ११(२४) जून, १९१७, को सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस, मज़दूर और सैनिक प्रतिनिधियों की पेत्रोग्राद सोवियत की कार्यकारिणी समिति, किसान प्रतिनिधियों की सोवियत की कार्यकारिणी समिति और कांग्रेस के सभी दलों के ब्यूरो की संयुक्त सभा में अस्थायी सरकार के मेन्शेविक मन्त्री त्सेरेतेली के भाषण की ओर संकेत किया गया है। समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने यह सभा इसलिये आयोजित की थी कि उस में अपने बहुमत से लाभ उठाते हुए बोल्शेविक पार्टी पर चोट कर सकें। अपने भाषण में त्सेरेतेली ने यह घोषणा की कि १०(२३) जून को बोल्शेविकों द्वारा किया जानेवाला प्रदर्शन "सरकार का तख़्ता उलटने और सत्ता हथियाने का षड्यन्त्र" है। त्सेरेतेली का सारा भाषण निन्दात्मक और प्रतिक्रान्तिकारी था। त्सेरेतेली और अन्य समाजवादी-क्रान्तिकारी तथा मेन्शेविक नेताओं के झूठे आरोपों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए बोल्शेविक सभा-भवन से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाहर चले गये थे। व्ला० इ० लेनिन इस सभा में उपस्थित नहीं थे और इस में भाग लेने के विरुद्ध थे।—पृ० ८५

35 Los-von-Kirche-Bewegung (चर्च से अलग होने का आन्दोलन), अथवा Kirchenaustrittsbewegung (चर्च से निकलने का आन्दोलन) ने प्रथम विश्वयुद्ध के पहले जर्मनी में जन-आन्दोलन का रूप धारण किया। जनवरी १९१४ में *«Die Neue Zeit»* पत्रिका में संशोधनवादी पाउल ग्योरे का लेख 'चर्च से निकलने का आन्दोलन और सामाजिक-जनवाद' प्रकाशित होने के बाद इस आन्दोलन के प्रति जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के रवैये के प्रश्न पर विचार-विनिमय किया जाने लगा। इस वाद-विवाद में प्रमुख जर्मन सामाजिक-जनवादी, ग्योरे को मुंहतोड़ जवाब नहीं दे पाये जो इस मत की पुष्टि करता था कि पार्टी को चर्च से निकलने के आन्दोलन के प्रति तटस्थ रहना चाहिये और अपने सदस्यों को पार्टी के नाम पर धर्म और चर्च विरोधी प्रचार करने से मना कर देना चाहिये।—पृ० ८७

36 लेनिन १९१७ के उत्तरार्ध में प्रचलित काग़ज़ी मुद्रा में अनुमानित वेतनों के आंकड़े दे रहे हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के ज़माने में काग़ज़ी रूबल का काफ़ी अवमूल्यन हो गया था।—पृ० ८८

37 **लासालवादी**—लासाल (जर्मन निम्नपूंजीवादी समाजवादी) के समर्थक तथा अनुयायी और १८६३ में लिपज़िग में आयोजित मज़दूर संस्थाओं की कांग्रेस में स्थापित आम जर्मन मज़दूर संघ के सदस्य। संघ का पहला अध्यक्ष लासाल था और उसी ने संघ के कार्यक्रम और कार्यनीति के सिद्धांतों की रूपरेखा बनायी थी। सार्विक मताधिकार के लिये संघर्ष संघ का राजनीतिक कार्यक्रम और राज्य की सहायतार्थ स्थापित उत्पादक मज़दूर संघों की स्थापना—उसका आर्थिक कार्यक्रम था। लासाल और उसके अनुयायी व्यावहारिक गतिविधियों में बिस्मार्क की महान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राष्ट्रवाली नीति का समर्थन करते थे। का० मार्क्स के नाम २७ जनवरी, १८६५ को लिखे गये पत्र में फ़्रे० एंगेल्स ने इस संबंध में ये शब्द लिखे थे: "वस्तुगत दृष्टि से यह प्रशावासियों के हितार्थ मज़दूर-आंदोलन का द्रोह और विश्वासघात है।" का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने लासालवादियों के सिद्धांत, कार्यनीति और संगठनात्मक उसूलों को जर्मन मज़दूर-आंदोलन की एक अवसरवादी प्रवृत्ति कहकर उनकी बार-बार और कड़ी आलोचना की। –पृ० ६१

[38] यहां रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस का उल्लेख किया गया है जो १९०३ में १७ जुलाई से १० अगस्त (३० जुलाई से २३ अगस्त) तक हुई थी। कांग्रेस की पहली १३ बैठकें ब्रसेल्स में हुईं। इसके बाद पुलिस द्वारा परेशान किये जाने के कारण कांग्रेस की बाक़ी बैठकें लन्दन में हुईं।

'ईस्क्रा' ने, जिसने लेनिन के निर्देशन में क्रान्तिकारी मार्क्सवाद के आधार पर रूसी सामाजिक-जनवादियों को एकजुट करने का बहुत बड़ा काम किया था, कांग्रेस की तैयारी की थी।

कांग्रेस के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न थे–पार्टी के कार्यक्रम और नियमावली की पुष्टि और पार्टी के निर्देशनकारी निकायों का चुनाव। इस कांग्रेस में लेनिन और उनके समर्थकों ने अवसरवादियों के विरुद्ध डटकर संघर्ष किया।

अवसरवादियों ने इस कांग्रेस में 'ईस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल द्वारा तैयार किये गये पार्टी के कार्यक्रम के मसविदे, विशेषतः मज़दूर-आन्दोलन में पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका सम्बन्धी धारा, सर्वहारा अधिनायकत्व की आवश्यकता और कार्यक्रम के कृषि सम्बन्धी भाग की बहुत कड़ी आलोचना की। कांग्रेस ने अवसरवादियों को मुंहतोड़ जवाब दिया और एकमत से (केवल एक प्रतिनिधि ने मतदान नहीं किया) पार्टी के कार्यक्रम की पुष्टि की, जिसमें आनेवाली पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति में सर्वहारा के निकट भविष्य के कार्यभारों (न्यूनतम कार्यक्रम) का उल्लेख था, और समाजवादी क्रान्ति की विजय और सर्वहारा अधिनायकत्व से सम्बन्धित कार्यभारों (अधिकतम कार्यक्रम) को भी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पष्ट किया गया था। मार्क्स और एंगेल्स की मृत्यु के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-आन्दोलन के इतिहास में पहली बार क्रान्तिकारी कार्यक्रम स्वीकार किया गया था, जिसमें लेनिन के आग्रह पर सर्वहारा अधिनायकत्व के लिये संघर्ष को मज़दूर-वर्ग की पार्टी का आधारभूत कार्यभार माना गया।

पार्टी की नियमावली पर विचार-विनिमय के समय पार्टी-संरचना के संगठनात्मक सिद्धान्तों के प्रश्न पर बहुत ज़ोरदार संघर्ष हुआ। लेनिन और उनके हिमायतियों ने मज़दूर-वर्ग की जुझारू क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के लिये संघर्ष किया। इसलिये नियमावली के पहले पैरे की रचना के समय लेनिन के प्रस्ताव के अनुसार पार्टी की सदस्यता के लिये केवल पार्टी कार्यक्रम को मानना और पार्टी की आर्थिक सहायता करना ही नहीं, बल्कि किसी न किसी पार्टी संगठन में व्यक्तिगत रूप से भाग लेना भी अनिवार्य था। मार्तोव ने कांग्रेस के सामने पहले पैरे का अपना मसौदा पेश किया, जिसके अनुसार पार्टी सदस्यता के लिये पार्टी कार्यक्रम को मानने और आर्थिक सहायता करने के अलावा किसी पार्टी संगठन के नेतृत्व में पार्टी के साथ नियमित रूप से केवल सहयोग करना ही पर्याप्त था। मार्तोव द्वारा प्रस्तुत नियमावली के पहले पैरे का मसौदा, जो सभी तरह के ढुलमुल तत्त्वों के लिये पार्टी में शामिल होना आसान बनाता था, थोड़े-से बहुमत के साथ स्वीकार कर लिया गया। मूलभूत रूप से कांग्रेस ने लेनिन द्वारा तैयार की गयी नियमावली की पुष्टि की। कांग्रेस ने कार्यनीति के प्रश्नों से सम्बन्धित कई प्रस्ताव भी स्वीकार किये।

इस कांग्रेस में 'ईस्क्रा' के रुझान के समर्थकों—लेनिनवादियों और 'ईस्क्रा' के नर्म दलवालों—मार्तोव के हिमायतियों के बीच फूट पड़ गयी। पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं के चुनाव के समय लेनिन के अनुयायियों ने बहुमत प्राप्त कर लिया और वे बोल्शेविक, तथा अल्पमत पानेवाले अवसरवादी मेन्शेविक कहलाने लगे।

रूस में मज़दूर-आन्दोलन के विकास में इस कांग्रेस ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की। लेनिन ने लिखा—"राजनैतिक विचारधारा और राजनैतिक पार्टी के रूप में बोल्शेविज़्म १९०३ से विद्यमान है"। नये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ढंग की सर्वहारा पार्टी का निर्माण करके, जो सभी देशों के क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों के लिये ग्रादर्श बन गयी, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस ने ग्रन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-ग्रान्दोलन को एक नया मोड़ दिया।—पृ० ६२

39 देखिये: कार्ल मार्क्स, 'फ़्रांस में गृहयुद्ध'।—पृ०१००

40 शाइलाक—शेक्सपियर के प्रहसन 'वेनिस का व्यापारी' का एक पात्र। एक निर्दय ग्रौर कठोर हृदय सूदख़ोर, जिसने क़र्ज़ ग्रदा न कर सकनेवाले क़र्ज़दार के शरीर से एक पौंड गोश्त काटने की ज़िद की थी।—पृ० ११०

41 बूर्सा के विद्यार्थी—उन धार्मिक स्कूलों के विद्यार्थी, जिनका जीवन रूसी लेखक न० ग० पोम्यालोव्स्की ने ग्रपनी 'बूर्सा की कहानियों' में चित्रित किया।—पृ० १११

42 पहले इन्टरनेशनल की हेग कांग्रेस १८७२ में २ से ७ सितम्बर तक हुई। इसमें १५ राष्ट्रीय संगठनों के ६५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। मार्क्स ग्रौर एंगेल्स ने कांग्रेस की तैयारी करते हुए सर्वहारा की क्रान्तिकारी शक्तियों की एकजुटता के सिलसिले में बहुत बड़ा कार्य किया। मार्क्स ग्रौर एंगेल्स के सुझाव पर कांग्रेस का कार्यक्रम ग्रौर उसकी कार्यविधि स्वीकार की गयी। कांग्रेस की कार्यसूची में दो मुख्य प्रश्न थे—१) जनरल कौंसिल के ग्रधिकार ग्रौर २) सर्वहारा की राजनैतिक कार्रवाइयां।

कांग्रेस ने जनरल कौंसिल के ग्रधिकार-विस्तार, उसके मुख्य कार्यालय के स्थान-परिवर्त्तन ग्रौर गुप्त 'सामाजिक-जनवादी संघ' की कार्रवाइयों के बारे में तथा ग्रन्य कई प्रस्ताव स्वीकार किये। मार्क्स ग्रौर एंगेल्स ने ही इन में से ग्रधिकतर प्रस्ताव लिखे ग्रौर उनके सुझाव ग्रन्य प्रस्तावों के ग्राधार बने।

दूसरे प्रश्न सम्बन्धी कांग्रेस के निर्णय में यह कहा गया कि "राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति सर्वहारा का महान कर्त्तव्य बन गया है"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रौर "सामाजिक क्रान्ति ग्रौर उसके ग्रन्तिम लक्ष्य–वर्ग-उन्मूलन–की प्राप्ति" के लिये सर्वहारा का राजनैतिक पार्टी के रूप में संगठित होना ज़रूरी है।

सभी प्रकार की निम्नपूंजीवादी गुटबाज़ी के विरुद्ध मार्क्स ग्रौर एंगेल्स तथा उनके समर्थकों का दीर्घकालीन संघर्ष इस कांग्रेस में पूरी तरह फलीभूत हुग्रा। ग्रराजकतावादियों के नेताग्रों–म० ग्र० बकूनिन, द० गिल्योम तथा ग्रन्य को इन्टरनेशनल से निकाल दिया गया।

हेग कांग्रेस के निर्णयों, उस सारे कार्य ने, जो मार्क्स ग्रौर एंगेल्स के प्रत्यक्ष निर्देशन में हुग्रा ग्रौर जिस में उन्होंने सक्रिय भाग लिया, ग्रराजकतावादियों के निम्नपूंजीवादी दृष्टिकोण पर मार्क्सवाद की विजय को व्यक्त किया ग्रौर भविष्य में मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टियों के निर्माण की नींव रखी।–पृ० ११९

43 देखिये: फ्रेडरिक एंगेल्स, कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित 'गोथा कार्यक्रम की ग्रालोचना' की भूमिका'।–पृ० ११९

44 'ज़ार्या' (प्रभात)–एक मार्क्सवादी वैज्ञानिक-राजनैतिक पत्रिका जो स्टुटगार्ट से १९०१–१९०२ में, क़ानूनी तौर पर 'ईस्क्रा' के सम्पादक-मण्डल द्वारा निकाली जाती थी। कुल मिलाकर चार ग्रंक (तीन पुस्तकों में) प्रकाशित हुए।–पृ० १२१

45 यहां दूसरे इन्टरनेशनल की पांचवीं ग्रन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस की ग्रोर संकेत है, जो १९०० में २३ से २७ सितम्बर तक पेरिस में हुई। मूलभूत प्रश्न पर "राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति ग्रौर पूंजीवादी पार्टियों के साथ एकता", जिसका सम्बन्ध वाल्देक-रूसो की प्रतिक्रान्तिकारी सरकार में ग्र० मिलेरां के शामिल होने से था, कांग्रेस ने का० काउत्स्की का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार किया। प्रस्ताव में कहा गया था कि "किसी इक्के-दुक्के समाजवादी का पूंजीवादी सरकार में शामिल होना राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने का सामान्य ग्रारम्भ नहीं, बल्कि कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करने का एकमात्र ग्रौर ग्रस्थायी उपाय माना जा सकता है।" बाद में ग्रवसरवादियों ने पूंजीपति-वर्ग के साथ ग्रपने सहयोग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की सफ़ाई देने के लिये प्रस्ताव के इस भाग का अक्सर हवाला दिया। — पृ०१२१

46 बर्न्सटीनवाद — अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद की एक अवसरवादी मार्क्सवाद-विरोधी प्रवृत्ति। यह जर्मनी में १९वीं शताब्दी के अंत में उत्पन्न हुई और इसका नाम जर्मन संशोधनवादी एडुअर्ड बर्न्सटीन से संबद्ध रहा। — पृ०१२२

47 देखिये: कार्ल मार्क्स, 'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर'। — पृ०१२२

48 देखिये: कार्ल मार्क्स और फ़ेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' के जर्मन संस्करण की १८७२ में लिखी गई भूमिका। — पृ०१२३

49 देखिये: कार्ल मार्क्स, 'फ़्रांस में गृहयुद्ध'। — पृ०१२६

50 देखिये: कार्ल मार्क्स और फ़ेडरिक एंगेल्स, 'केन्द्रीय समिति की कम्युनिस्ट लीग से अपील'। — पृ०१३१

51 देखिये: कार्ल मार्क्स, 'फ़्रांस में गृहयुद्ध'। — पृ० १३४

52 आशय बीट्रिस और सिडनी वेब द्वारा लिखित 'ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनवाद का सिद्धान्त और व्यवहार' से है। — पृ०१३४

53 'समाजवादी मासिक' («*Sozialistische Monatshefte*») — एक पत्रिका, जर्मन अवसरवादियों का मुखपत्र और अन्तर्राष्ट्रीय संशोधनवाद का एक मुखपत्र। यह पत्रिका बर्लिन से १८९७ और १९३३ के बीच प्रकाशित होती रही। पहले विश्वयुद्ध (१९१४—१९१८) के समय पत्रिका ने सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी। — पृ०१३८

54 जोरेसवादी — फ़्रांसीसी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन के एक प्रमुख नेता, जां जोरेस के अनुयायी। जोरेस जनवाद और जनता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की स्वतंत्रताओं के लिए, शांति के लिए और साम्राज्यवादी उत्पीड़न तथा आक्रमणकारी युद्धों के ख़िलाफ़ लड़नेवालों में एक थे। तथापि, जोरेस और उनके अनुयायियों ने मार्क्सवाद की मुख्य प्रस्थापनाओं को संशोधित करने का प्रयास किया। जोरेसवादी सोचते थे कि समाजवाद की विजय की सिद्धि पूंजीपति-वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के फलस्वरूप नहीं, बल्कि "जनवादी विचार के फूलने-फलने" से की जा सकती है। वे उत्पीड़कों और उत्पीड़ितों के बीच वर्ग-सामंजस्य का प्रतिपादन करते थे, सहकारिता के बारे में प्रूदोंवादियों की भ्रांतियों को मानते थे और इस बात पर ज़ोर देते थे कि पूंजीवादी अवस्थाओं के अन्तर्गत उसके विकास का परिणाम अंततोगत्वा समाजवाद में संक्रमण होगा। १९०२ में जोरेसवादियों ने फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी की स्थापना की और सुधारवादी नीति का अनुगमन किया। १९०५ में उन्होंने फ़्रांस की गेदवादी समाजवादी पार्टी के साथ संयुक्त होकर एक फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी की स्थापना की। लेनिन ने जोरेस और उनके अनुयायियों के सुधारवादी विचारों की कड़ी आलोचना की। जोरेस ने शांति के लिए और आसन्न युद्ध के ख़तरे के ख़िलाफ़ जो संघर्ष चलाया, उस कारण साम्राज्यवादी पूंजीपति-वर्ग को उनसे घोर घृणा थी। प्रथम विश्वयुद्ध की पूर्ववेला में प्रतिक्रिया के गुर्गों ने जोरेस की हत्या कर दी।

प्रथम विश्वयुद्ध के ज़माने में जोरेसवादियों ने, जिनका फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में प्रभुत्व था, साम्राज्यवादी युद्ध का खुलकर समर्थन किया और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रुख़ अपनाया। –पृ० १३८

55 इतालवी समाजवादी पार्टी १८९२ में स्थापित की गयी और शुरू में इसका नाम 'इतालवी मेहनतकशों की पार्टी' था; १८९३ में रेज्जो-एमीली की कांग्रेस में इसने अपना नाम 'इतालवी मेहनतकशों की समाजवादी पार्टी' रख लिया और १८९५ में 'इतालवी समाजवादी पार्टी' कहलाने लगी। पार्टी की स्थापना के समय से ही उस में अवसरवादी और क्रान्तिकारी – इन दो रुझानों के बीच, जिन में नीति और कार्यनीति की भिन्नता थी, ज़ोरदार संघर्ष शुरू हो गया था। १९१२ में रेज्जो-एमीली की कांग्रेस में वामपंथियों के ज़ोर देने पर अपेक्षाकृत

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पष्ट सुधारवादियों – युद्ध-समर्थकों और सरकार तथा पूंजीपति-वर्ग के साथ सहयोग के पक्षपातियों को पार्टी से निकाल दिया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ से इटली के युद्ध में शामिल होने तक इतालवी समाजवादी पार्टी ने युद्ध का विरोध किया और "युद्ध के विरुद्ध, तटस्थता के पक्ष में!" नारा लगाया। दिसम्बर १९१४ में कई गद्दारों (मुसोलिनी और कई अन्य) को, जो पूंजीपति-वर्ग की साम्राज्यवादी नीति का पक्ष-पोषण और युद्ध का समर्थन करते थे, पार्टी से निकाल दिया गया। इटली के एंटेंट के पक्ष में युद्ध में शामिल होने पर (मई १९१५) इतालवी समाजवादी पार्टी में स्पष्टतः तीन प्रवृत्तियां प्रकट हुईं – १) दक्षिणपंथी, युद्ध में पूंजीपति-वर्ग की सहायता करनेवाले; २) मध्यमार्गी – पार्टी के अधिकतर सदस्य इस प्रवृत्ति के समर्थक थे और इनका नारा था – "न तो युद्ध में भाग लो और न उस में बाधा डालो" तथा ३) वामपंथी, जिन्होंने युद्ध के विरुद्ध निर्णायक रवैया अपनाया, मगर जो उसके विरुद्ध सुसंगत संघर्ष नहीं कर पाये। वामपंथी साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में वदलने और पूंजीपतियों से सहयोग करनेवाले सुधारवादियों से पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ने की आवश्यकता का महत्त्व नहीं समझते थे। इतालवी समाजवादियों ने स्विट्ज़रलैंड के समाजवादियों के साथ मिलकर लुगानो में सम्मेलन किया (१९१४) और ज़िम्मरवाल्ड (१९१५) तथा किएन्थाल (१९१६) के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलनों में सक्रिय भाग लिया।

१९१६ के अन्त में इतालवी समाजवादी पार्टी सामाजिक-शान्तिवाद के पथ पर अग्रसर हुई। – पृ० १३८

56 ब्रिटेन की स्वतंत्र मज़दूर पार्टी एक सुधारवादी संगठन था, जिसे "नये ट्रेड-यूनियनों" के नेताओं ने १८९३ में स्थापित किया था, जब हड़ताली संघर्ष फिर शुरू हो रहा था और पूंजीवादी पार्टियों से स्वतंत्र मज़दूर आन्दोलन की मांग ज़ोर पकड़ रही थी। स्वतंत्र मज़दूर पार्टी में "नये ट्रेड-यूनियनों" के और कई पुराने ट्रेड-यूनियनों के नेता तथा फ़ेवियनों द्वारा प्रभावित बुद्धिजीवी और निम्नपूंजीवादी तत्त्व भी सम्मिलित थे। पार्टी के नेता काइर हार्डी और रैमज़े मैकडानल्ड थे। आरंभ से ही पार्टी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने संघर्ष के संसदीय स्वरूप और उदारतावादी पार्टी के साथ संसदीय सौदों पर जोर देते हुए पूंजीवादी-सुधारवादी रवैया अपनाया। इस पार्टी का चरित्रचित्रण करते हुए लेनिन ने लिखा था कि यह "असल में एक अवसरवादी पार्टी है, जो सदा ही पूंजीपति-वर्ग पर निर्भर रही है"।

प्रथम विश्वयुद्ध के छिड़ने के समय स्वतंत्र मज़दूर पार्टी ने एक युद्ध विरोधी घोषणापत्र प्रसारित किया, लेकिन फिर जल्दी ही सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी स्थितियों पर उतर आई। —पृ० १३८

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम-निर्देशिका

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मध्यमार्गी स्थिति अपनायी। अतिसाम्राज्यवाद के प्रतिक्रियाशील सिद्धान्त के रचयिता। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद सर्वहारा क्रान्ति और मज़दूर-वर्ग के 'अधिनायकत्व, सोवियत सत्ता का प्रत्यक्ष विरोध किया।—५,१०,१५,३२, ३६,५२,५६, ७५, ७६,८७,११८,१२०,१२१, १२२,१२३, १२४,१२५,१२६, १२७,१२८,१२९,१३०,१३१, १३२, १३३, १३४,१३६,१३७, १३८।

कुगेलमन, लुडविग (Kugelmann, Ludwig) (१८३०–१९०२)—जर्मन सामाजिक-जनवादी, कार्ल मार्क्स के मित्र, जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रांति में भाग लिया, पहले इंटरनेशनल के सदस्य।—४३।

केरेन्स्की, अ० फ़० (जन्म १८८१)—समाजवादी-क्रांतिकारी। १९१७ में फ़रवरी की पूंजीवादी-जनवादी क्रांति के बाद न्याय-मंत्री, युद्ध-मंत्री तथा नौसेना-मंत्री रहे; बाद में पूंजीवादी अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री और सर्वोच्च सेनापति। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत सत्ता के ख़िलाफ़ सक्रिय रूप से लड़े और १९१८ में विदेश भाग गये।—१५,८३।

कोर्नेलीसेन, क्रिस्टियन (Cornelissen, Christian)—डच अराजकतावादी प० अ० क्रोपोत्किन के अनुयायी, मार्क्सवाद के विरोधी। पहले विश्वयुद्ध के दौरान—अन्धराष्ट्रवादी।—११२।

कोल्ब, विल्हेल्म (Kolb, Wilhelm) (१८७०–१९१८)—जर्मन सामाजिक-जनवादी, घोर अवसरवादी और संशोधनवादी। «*Volksfreund*» (जनता का मित्र) पत्रिका के सम्पादक। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में—सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी।—१३८।

क्रोपोत्किन, प०अ०(१८४२–१९२१)—अराजकतावाद का प्रतिष्ठित सिद्धान्तकार और कार्यकर्त्ता। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में—अन्धराष्ट्रवादी। १९१७ में विदेशी निर्वासन से लौटकर पूंजीवादी विचारधारा के समर्थक बने रहे। १९२० में यूरोपीय मज़दूरों के नाम अपने एक पत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की ऐतिहासिक भूमिका स्वीकार की और सोवियत रूस के ख़िलाफ़ फ़ौजी दख़लांदाज़ी का विरोध करने की अपील की। – ११२, १३५।

गे, अ० यू० (मृत्यु १९१९) – रूसी अराजकतावादी। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत सत्ता के समर्थक। – ११२

गेद, जूल (Guesde, Jules) (१८४५–१९२२) – फ़्रांसीसी समाजवादी आन्दोलन तथा दूसरे इन्टरनेशनल के एक संगठनकर्त्ता और नेता। पहला विश्वयुद्ध छिड़ने के समय से उन्होंने सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी स्थिति अपना ली और फ़्रांस की पूंजीवादी सरकार में शामिल हो गये। – ५।

ग्रैव, जान Grave, Jean (१८५४–१९३९) – फ़्रांसीसी निम्नपूंजीवादी समाजवादी, अराजकतावाद के एक सिद्धांतकार। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। – ११२।

चेर्नोव, व० म० (१८७६–१९५२) – समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी के एक नेता और सिद्धांतकार। १९१७ में पूंजीवादी अस्थायी सरकार में कृषि-मंत्री के नाते ज़मींदारों की ज़मीनों पर क़ब्ज़ा कर लेनेवाले किसानों के ख़िलाफ़ निर्मम दमन की नीति चलाई। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत विरोधी बग़ावतों के संगठनकर्त्ताओं में एक। १९२० में विदेश भाग गये और वहां अपनी सोवियत विरोधी कार्रवाइयां जारी रखीं। – ५, १६, ५३, ९०, १११, १३७।

जेंज़ीनोव, व्ला० मि० (जन्म १८८१) – समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी के एक नेता और उसकी केंद्रीय समिति के सदस्य। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – प्रतिरक्षावादी। १९१७ में पेत्रोग्राद सोवियत की कार्यकारिणी के सदस्य; पूंजीपति-वर्ग के साथ मेल की हिमायत की; समाजवादी-क्रांतिकारियों के मुखपत्र 'देलो नारोदा' (जनता का ध्येय) के एक सम्पादक। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोवियत सत्ता के विरोधी रहकर विदेश चले गये। – ५३।

जोरेस, जान (Jourès, Jean) (१८५९–१९१४) – फ़्रांसीसी ग्रौर ग्रन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी ग्रान्दोलन की एक प्रमुख हस्ती ग्रौर इतिहासकार। १८८५–१८८९, १८९३–१८९८, १९०२–१९१४ में – संसद सदस्य। संसद में समाजवादी दल के एक नेता। १९०४ में *«L'Humanite»* (मानवजाति) नामक समाचारपत्र की स्थापना की ग्रौर ग्रपने जीवन के ग्रन्त-काल तक उसका सम्पादन किया। जनवाद, ग्रवाम की ग्राज़ादी ग्रौर शान्ति के पक्ष में तथा साम्राज्यवादी उत्पीड़न ग्रौर लुटेरू युद्धों के विरोध में खुलकर सामने ग्राये। शान्ति के पक्ष ग्रौर युद्ध के ग्रासन्न ख़तरे के ख़िलाफ़ ग्रपने संघर्ष के कारण उन्होंने साम्राज्यवादी पूंजीपति-वर्ग की घोर शत्रुता मोल ले ली ग्रौर पहले विश्वयुद्ध से ठीक पहले प्रतिक्रिया के एक ज़र-ख़रीद गुंडे ने उनकी हत्या कर दी। – १२०, १३८।

डेविड, एडुग्रर्ड (David Eduard) (१८६३–१९३०) – ग्रर्थशास्त्री, जर्मन सामाजिक-जनवादी ग्रांदोलन के एक दक्षिणपंथी नेता; सुधारवादी। जर्मन ग्रवसरवादियों के मुखपत्र *«Sozialistische Monatshefte»* (समाजवादी मासिक) के एक संस्थापक। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – सामाजिक-ग्रन्धराष्ट्रवादी। – ५, ५१, १३७, १३८।

ड्यूहरिंग, यूजेन (Dühring, Eugen) (१८३३–१९२१) – जर्मन दार्शनिक तथा ग्रर्थशास्त्री, निम्नपूंजीवादी सिद्धान्तकार। – २०, २३।

तुगान-बरानोव्स्की, मि० इ० (१८६५–१९१९) – रूसी पूंजीवादी ग्रर्थशास्त्री। १९०५–१९०७ की क्रांति के समय संवैधानिक-जनवादी पार्टी के सदस्य। ग्रक्तूवर समाजवादी क्रांति के बाद उक्रइना में सक्रिय प्रति-क्रांतिकारी। – १०६।

तुराती, फिलिप्पो (Turati, Fillippo) (१८५७–१९३२) – इटली के मज़दूर ग्रान्दोलन के एक सुधारवादी नेता; १८९२ में – इतालवी समाजवादी पार्टी के एक संस्थापक। पहले साम्राज्य-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वादी विश्वयुद्ध के दौरान मध्यमार्गी स्थिति अपनायी। अक्तूवर समाजवादी क्रान्ति के प्रति उनका रवैया विरोधी था। इतालवी समाजवादी पार्टी में फूट के वाद (१६२२) सुधारवादी एकीकृत समाजवादी पार्टी के नेता वने। १६२६ में फ़ासिस्ट इटली से फ़्रांस चले गये। – १३८।

त्रीव्ज़, क्लाव्दियो (Treves, Claudio) (१८६६–१६३३) – इतालवी समाजवादी पार्टी के एक सुधारवादी नेता। पहले साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध के दौरान – मध्यमार्गी। अक्तूवर समाजवादी क्रान्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख़ अपनाया। – १३८।

त्सेरेतेली, इ० ग० (१८८२–१६५६)– एक मेंशेविक नेता। पहले साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध के दौरान – मध्यमार्गी। १६१७ में फ़रवरी की पूंजीवादी-जनवादी क्रांति के वाद पूंजीवादी अस्थायी सरकार में शामिल हुए। वोल्शेविकों के ख़िलाफ़ प्रतिरोधों का संगठन करनेवालों में एक। अक्तूवर समाजवादी क्रांति के वाद जार्जिया की प्रतिक्रांतिकारी मेंशेविक सरकार के नेताओं में एक। जार्जिया में सोवियत सत्ता की विजय के वाद विदेश में उत्प्रवासी। – ५, १६, ५३, ५५, ८५, ६०, १११, १३७।

नेपोलियन प्रथम (बोनापार्ट) (Napoleon I [Bonaparte]) (१७६६–१८२१)–फ़्रांस के सम्राट (१८०४–१८१४ और १८१५)। – ८७।

नेपोलियन तृतीय (बोनापार्ट, लूई; लूई नेपोलियन) (Napoleon III [Bonaparte, Louis; Louis Napoleon]) (१८०८–१८७३)– फ़्रांसीसी सम्राट (१८५२–१८७०)। नेपोलियन प्रथम के भतीजा। १८४८ की क्रांति की पराजय के वाद फ़्रांसीसी गणराज्य के राष्ट्रपति चुने गये; २ दिसंवर (१८५१) की पूर्ववेला में सत्ता पर क़ब्ज़ा करके सिंहसनारूढ़। – ३१।

पान्नेकोएक, अंतोन (१८७३–१६६०)(Pannekoek, Anton)– डच सामाजिक-जनवादी; प्रथम विश्वयुद्ध में अन्तर्राष्ट्रवादी रवैया अपनायी। हालैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य (१६१८–१६२१)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वकूनिन, म० अ० (१८१४–१८७६)–नरोदवाद और अराजकतावाद के एक विचारधारा-निरूपक। १८४० से विदेशों में रहे; उन्होंने १८४८–१८४९ की जर्मन क्रान्ति में भाग लिया। पहले इंटरनेशनल के सदस्य और मार्क्सवाद के कट्टर दुश्मन। सर्वहारा अधिनायकत्व समेत हर तरह के राज्य को नामंज़ूर किया, सर्वहारा की विश्व ऐतिहासिक भूमिका वे समझ न पाये, मज़दूर-वर्ग की स्वतंत्र राजनैतिक पार्टी की स्थापना के खुले तौर पर विरोधी रहे तथा मज़दूरों को राजनैतिक सरगर्मियों से रोकने के मत का समर्थक रहे। कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक ऐंगेल्स ने वकूनिन के प्रतिक्रियावादी विचारों के ख़िलाफ़ दृढ़संकल्पी संघर्ष चलाया। वकूनिन अपनी फूट डालनेवाली सरगर्मियों के कारण १८७२ में इन्टरनेशनल से निकाल किये गये।–६०, ७५,११९।

बर्न्संटीन, एडुअर्ड (Bernstein, Eduard) (१८५०–१९३२)–जर्मन सामाजिक-जनवाद और दूसरे इन्टरनेशनल के घोर अवसरवादी नेता, संशोधनवाद तथा सुधारवाद के सिद्धान्तकार। छठे दशक के मध्य से सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में भाग लिया। वे मज़दूर आन्दोलन का मुख्य कार्यभार सुधारों के लिए संघर्ष मानते थे, जो उनके कथनानुसार पूंजीवाद के तहत मज़दूरों को आर्थिक दशा की "वेहतरी" की ओर ले जाते हैं। उन्होंने इस अवसरवादी सिद्धान्त-सूत्र की स्थापना की: "आन्दोलन ही सव कुछ है, अन्तिम लक्ष्य कुछ भी नहीं"। पहले विश्वयुद्ध के दौरान मध्यमार्गी रहे और अन्तर्राष्ट्रीयतावादी लफ़्फ़ाज़ी में सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी विचारों को डुवो दिया; युद्धोत्तर काल में भी पूंजीपति-वर्ग की साम्राज्यवादी नीति के समर्थक वने रहे। अक्तूवर समाजवादी क्रान्ति और सोवियत राज्य के विरोधी।–४९, ५८, ५९, ६०, १२०, १२१, १२२, १२३,१२७,१३१, १३४।

बिसोलाती, लियोनीद (Bissolati, Leonida) (१८५७–१९२०) इतालवी समाजवादी पार्टी के संस्थापकों में एक और उसके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घोर दक्षिणपक्ष के एक नेता। १९१२ में पार्टी से निकाल दिये गये और उन्होंने "सामाजिक-सुधारवादी पार्टी" बनायी। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में—सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी और यह मांग की कि इटली एंटेंट के राष्ट्रों की तरफ़दारी में युद्ध में दाख़िल हो; १९१६–१९१८ में विभाग-रहित मन्त्री।—५१।

विस्मार्क, ओटो एडुअर्ड लेवपोल्द (Bismark, Otto Eduard Leopold) (१८१५–१८९८)—प्रशिया और जर्मनी के एक राजपुरुष तथा कूटनयिक।—१५।

बेबेल, अगस्त (Bebel, August) (१८४०–१९१३)—जमुन सामाजिक-जनवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता। पहले इन्टरनेशनल के सदस्य। १८६९ में विल्हेल्म लीव्कनेख़्त के साथ मिलकर जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी (आयज़ेनाख़वादियों की) की नींव डाली; कई बार जर्मन संसद के सदस्य चुने गये। १९वीं शताब्दी के अन्त और २० वीं शताब्दी के शुरू में जर्मन सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में सुधारवाद तथा संशोधनवाद का सक्रिय विरोध किया।—७२, ७३,७५,७६,९५, ९६,१०१,।

•

ब्रांटिंग, कार्ल यात्मार (Branting, Carl Ialmar) (१८६०–१९२५)—स्वीडन की सामाजिक-जनवादी पार्टी के एक नेता, दूसरे इन्टर-नेशनल के नेताओं में से एक, अवसरवादी।—५१, १३८।

ब्राके, विल्हेल्म (Bracke, Wilhelm) (१८४२–१८८०)—जर्मन समाजवादी, जर्मनी की आयज़ेनाख़वादी पार्टी के एक संस्थापक (१८६९) और नेता।—७३,९५।

ब्रेश्को-ब्रेश्कोव्स्काया, ये० को० (१८४४–१९३४)—समजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी की एक संगठनकर्त्री और नेत्री, पार्टी के घोर दक्षिणपक्ष से सम्बन्धित थीं। फ़रवरी पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद (१९१७) पूंजीवादी अस्थायी सरकार का सक्रिय समर्थन किया। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवि-यत सत्ता का सक्रिय विरोध किया।—५।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मांटेस्क्यू, शार्ल लूई (Montesquieu, Louis) (१६८६–१७५५)–एक प्रमुख फ़्रांसीसी पूंजीवादी समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री तथा लेखक। अठारहवीं सदी के पूंजीवादी जागरण के प्रतिनिधि, संवैधानिक राजतंत्र के सिद्धांतकार।–६१।

मार्क्स, कार्ल (Marx, Karl) (१८१८–१८८३)–वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के जन्मदाता, महान दार्शनिक, विश्व सर्वहारा वर्ग के नेता तथा शिक्षक।–६–१०, १७,२०,२२–२७, २६–३०, ३३, ३५–३६, ३८–४६, ४६–५२, ५४,५८–६०,६२–६४,६७–६८, ७२–७४, ८०,८२,६१–६२, ६५–६८, १००,१०४–१०८, ११२–११३, ११६, १२१–१२३, १२५–१२६, १२८,१३०–१३१, १३३–१३४, १३६।

मिख़ाइलोव्स्की, न० क० (१८४२–१६०४)–उदार नरोदवाद के एक प्रमुख सिद्धांतकार, पत्रकार, साहित्य-समीक्षक और गोचरवादी। १८६२ में 'रूस्कोये बोगातस्त्वो' (रूसी सम्पदा) पत्रिका के एक संचालक, मार्क्सवादियों के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष किया।–१२।

मिलेरां, अलेक्सान्द्र एत्येन (Millerand, Alexandre Etienne) (१८५६–१६४३)–फ़्रांसीसी राजनैतिक हस्ती। पिछली सदी की अन्तिम दशाब्दी में वे समाजवादियों में शामिल हो गये और फ़्रांसीसी समाजवादी आन्दोलन में अवसरवादी धारा के अगुआ रहे। १८६६ में वाल्देक-रूस्सो की प्रतिगामी पूंजीवादी सरकार में शरीक हो गये और पेरिस कम्यून के हत्यारे जनरल गैलीफ़े के साथ मिलकर काम किया। व्ला० इ० लेनिन ने मिलेरांपंथ का सर्वहारा वर्ग के ध्येय के प्रति विश्वासघात, संशोधनवाद की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में पर्दाफ़ाश किया तथा उसकी सामाजिक जड़ें खोद दीं।

१६०४ में समाजवादी पार्टी से निकाल दिये जाने के बाद भूतपूर्व समाजवादियों के साथ मिलकर (ब्रियान्द, विविआनी), मिलेरां ने "स्वतंत्र समाजवादियों" का एक दल बनाया। १६०६–१६१०, १६१२–१६१३, १६१४–१६१५ में विभिन्न मंत्रिपद अपनाये। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत विरोधी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दख़लांदाज़ी के संगठनकर्त्ताओं में एक। – १२०।

मेहरिंग, फ़्रांज़ (Mehring, Franz) (१८४६–१९१९) – जर्मनी के मज़दूर आन्दोलन के प्रमुख नेता, जर्मन सामाजिक-जनवाद के वामपक्ष के एक नेता तथा सिद्धान्तकार। पार्टी के सैद्धान्तिक प्रकाशन, *«Die Neue Zeit»* (नया ज़माना) पत्रिका के एक सम्पादक। उन्होंने जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। – ३८।

रादेक, का० ब० (१८८५–१९३९) – बीसवीं सदी के पहले दशक से गालीशिया, पोलैंड तथा जर्मनी में सामाजिक-जनवादी आंदोलन में भाग लिया। प्रथम विश्वयुद्ध में अन्तर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण अपनाया, मगर मध्यमार्ग की तरफ़ झुक गये। जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में दृष्टिकोण ग़लत था। १९१७ में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बन गये। ब्रेस्त शान्ति संधि की बहस में "वाम-कम्युनिस्ट" रुख़ अपनाया। १९२३ से त्रोत्स्कीपंथी विरोध पक्ष में अपनी सरगरमियों के कारण १९२७ में पार्टी से निकाल दिये गये। – १२८।

•

रुबानोविच, इ० अ० (१८६०–१९२०) – समाजवादी-क्रान्तिकारियों के एक नेता और अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी ब्यूरो के एक सदस्य। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत सत्ता के विरोधी। – ५।

रुसानोव, न० स० (जन्म १८५९) – पत्रकार, नरोदवादी और बाद में समाजवादी-क्रांतिकारी। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद विदेश चले गये। – ५३।

रेनोदिल, पियेर (Renaudel, Pierre) (१८७१–१९३५) – फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के एक सुधारवादी नेता। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। – ५,५१।

लासाल, फ़र्दीनांद (Lassalle, Ferdinand) (१८२५–१८६४) – जर्मन निम्नपूंजीवादी समाजवादी, जर्मन मज़दूर आन्दोलन में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवसरवाद के एक स्वरूप——लासालवाद के संस्थापक। आम जर्मन मज़दूर संघ के एक संस्थापक (१८६३)। संघ की स्थापना मज़दूर आन्दोलन के लिए बेशक महत्त्वपूर्ण थी, परन्तु उसके अध्यक्ष लासाल ने संघ का अवसरवादी मार्गदर्शन किया।—९१, ९५, ९६, १०४, १०५, १०६।

लीब्कनेख़्त, विल्हेमल्म (Liebknecht, Wilhelm) (१८२६–१९००)–जर्मन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के एक प्रमुख नेता, जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के एक संस्थापक तथा अगुआ। उन्होंने पहले इन्टरनेशनल के काम और दूसरे इन्टरनेशनल की स्थापना में सक्रिय भाग लिया।—७५, ७८।

लुक्जेम्बुर्ग, रोज़ा (Luxemburg, Rosa) (१८७१–१९१९)–अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन की एक प्रमुख नेत्री, दूसरे इन्टरनेशनल के वामपक्ष की एक नेत्री और पोलिश सामाजिक-जनवादी पार्टी की एक संस्थापक और नेत्री, पोलिश मज़दूर आन्दोलन में राष्ट्रीयतावादी धारा के विरुद्ध थीं। १८९७ से जर्मन सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और बर्नसटीनवाद और मिलेरांवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। वार्सा में पहली रूसी क्रान्ति में सक्रिय भाग लिया।

विश्व साम्राज्यवादी युद्ध के आरंभ से ही उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण अपनाया और 'इन्टरनेशनल' दल के, जो बाद में 'स्पार्तकिस' और अंत में 'स्पार्तकिस लीग' कहलाने लगा, के संगठनकर्ताओं में एक थीं। जर्मनी में नवंबर, १९१८ की क्रांति के बाद जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की उद्घाटन कांग्रेस में प्रमुख भाग लिया। जनवरी, १९१९ में उन्हें गिरफ़्तार करके उनकी हत्या कर दी गई।—१२८।

लेजियन, कार्ल (Legien, Karl) (१८६१– १९२०)–जर्मन दक्षिणपंथी सामाजिक-जनवादी, जर्मन ट्रेड-यूनियनों के एक नेता, संशोधनवादी। पहले विश्वयुद्ध के दौरान घोर सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरोध किया। – ५,५१,५४, १३७,१३८।

वेडेमेयर, जोज़ेफ़ (Weydemeyer, Joseph) (१८१८–१८६६)– जर्मन और अमरीकी मज़दूर आन्दोलन के प्रमुख कार्यकर्त्ता, कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी साथी। – ३८।

वेब, बीट्रिस (Webb, Beatris) (१८५८–१९४३)–प्रसिद्ध अंग्रेज़ सार्वजनिक कार्यकर्त्री। – १३४।

वेब, सिडनी (Webb, Sidny) (१८५९–१९४७) प्रसिद्ध अंग्रेज़ सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, सुधारवादी; सुधारपंथी फ़ेवियन सोसाइटी के एक संस्थापक। अपनी पत्नी के साथ ब्रिटिश मज़दूर आंदोलन के इतिहास तथा सिद्धांत पर कई कितावों का सहलेखन किया। प्रथम विश्वयुद्ध में सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी रवैया अपनाया। पहले लेबर मन्त्रि-मण्डल (१९२४) के और दूसरे (१९२९–१९३१) के भी सदस्य। सोवियत संघ के हमदर्द। – १३४।

वेंडरवेल्डे, एमिले (Vandervelde, Emile) (१८६६–१९३८)– वेल्जियम की मज़दूर पार्टी के एक नेता। दूसरे इन्टरनेशनल के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी व्यूरो के अध्यक्ष। उनका दृष्टिकोण घोर अवसरवादी था। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में – सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी, पूंजीवादी सरकार के सदस्य। – ५,५१,५४, १३७,१३८।

शीदेमान, फ़िलिप (Scheidemann, Philipp) (१८६५–१९३९)– जर्मन सामाजिक-जनवाद के घोर दक्षिणपंथी अवसरवादी पक्ष के एक नेता। पहले साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध के दौरान – घोर सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। जर्मनी में नवंवर, १९१८ की क्रांति के दौर में उन्होंने स्पार्टाकस लीग के सदस्यों के ख़िलाफ़ सामूहिक हत्याओं का उकसावा दिया। फ़रवरी – जून, १९१९ में यह वाइमर गणराज्य की संयुक्त सरकार के प्रमुख वन गये। १९१८–१९२१ में जर्मन मज़दूर आन्दोलन के ख़ूनी दमन के संगठनकर्त्ताओं में एक थे। – ५,५१,५४,१३७।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्कोबेलेव, म० इ० (१८८५–१९३९)–१९०३ से रूसी सामाजिक-जनवादी, मेन्शेविक ; पहले विश्वयुद्ध के दौरान – मध्यमार्गी। १९१७ में फ़रवरी पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के बाद पेत्रोग्राद सोवियत के उपप्रधान, प्रथम समायोजन की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के उपप्रधान ; मई, १९१७ से अगस्त तक अस्थायी पूंजीवादी सरकार में श्रम-मन्त्री। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद मेंशेविकों से नाता तोड़ लिया। — १९,५३।

स्टर्नर, माक्स (Stirner, Max, (१८०६–१८५६)–जर्मन दार्शनिक, पूंजीवादी व्यक्तिवाद और अराजकतावाद के एक विचारधारा-निरूपक। – ११९।

स्टानिंग, थोर्वाल्ड (Stauning, Thorwald) (१८७३–१९४२) – डेनमार्क के राजनेता और पत्रकार तथा डेनमार्क के सामाजिक-जनवादी आंदोलन और दूसरे इंटरनेशनल के एक दक्षिणपंथी नेता। प्रथम विश्वयुद्ध में उन्होंने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रुख़ रखा। १९१६ से १९२० तक डेनमार्क को पूंजीवादी सरकार में विभाग रहित मंत्री। – ५१, १३८।

स्त्रूवे, प० ब० (१८७०–१८४४)–रूसी पूंजीवादी अर्थशास्त्री तथा पत्रकार। सांविधानिक-जनवादी पार्टी के एक नेता। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत सत्ता के कट्टर दुश्मन और व्रांगेल की प्रतिक्रान्तिकारी सरकार के एक सदस्य। बाद में देश छोड़कर भाग गये। – ४४।

स्पेन्सेर, हर्बर्ट (Spencer, Herbert) (१८२०–१९०३) – अंग्रेज़ दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री। अपने प्रतिक्रियावादी दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय विचारों के कारण स्पेन्सेर अंग्रेज़ पूंजीपति वर्ग के एक अतिप्रिय विचारधारा-निरूपक बन गये। – १२।

सेम्बात, मार्सेल (Sembat, Marcel) (१८६२–१९२२) – पत्रकार और फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के सुधारवादी नेताओं में एक। पहले विश्वयुद्ध के दौरान – सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। अगस्त, १९१४ से सितंबर,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९१७ तक फ़्रांस की साम्राज्यवादी "रणट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार" में लोक निर्माण-कार्य के मंत्री रहे। फ़रवरी, १९१५ में एंटेंट देशों के समाजवादियों के सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी कांफ़्रेंस में भाग लिया। – ५१,५४।

हिन्दमैन, हेनरी मायर्स, (Hyndman, Henry Mayers) (१८४२–१९२१) – अंग्रेज़ समाजवादी; सुधारवादी। – ५।

हेंडेरसन, आर्थर (Henderson, Arthur) (१८६३–१९३५)– ब्रिटिश लेबर पार्टी और ट्रेड-यूनियन आंदोलन के एक नेता। प्रथम विश्वयुद्ध में सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी। – ५१।

हेगेल, जॉर्ज विल्हेल्म फ़्रेडरिक (Hegel, Georg Wilhelm Friedrich) (१७७०–१८३१) – एक प्रमुख जर्मन भाववादी दार्शनिक। जर्मन पूंजीपतियों के विचारधारा-निरूपक। हेगेल की ऐतिहासिक सेवा की महानता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने द्वन्द्ववाद का सांगोपांग विवेचन किया, जो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का एक सैद्धान्तिक स्रोत बन गया। – ८।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
२१, जूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

९५

В. И. ЛЕНИН

ГОСУДАРСТВО И РЕВОЛЮЦИЯ

На языке хинди

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha